नूतन निष्काम पत्रिका

स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-8 * अंक-9 * मुम्बई * सितम्बर 2017 * मूल्य-रु.9/-

ऋषि निर्वाण दिवस

दशहरा एवं दीपावली की शुभकामनाये

अथ: पित्तर पूजन क्या है।

हमारे ग्रामीण समाज में श्राद्ध पक्ष में स्वर्गीय पिता-पितामह आदि के प्रति उनको उत्तम भोजन वस्त्र दान कर उनके प्रतिनिधि कौए को ससम्मान बुला कर भोजन कराया जाता है। पिता-पितामह के वन्शज स्नान आदि कर घर में उत्तम पकवान बना कर केवल मिष्ठान्न का भोजन कराया जाता है। लोक परमपरा के अनुसार केवल पुरुष वर्ग ही अपने पित्तरों की भोजन प्रस्तुत कर उनको आमंत्रित कर सकता है, पुत्रियां या घर की बहुओं से पित्तर भोजन ग्रहण नहीं करते।

आर्य समाज इस प्रथा का खण्डन करता है और कहता है यह पूरा विचार ही गलत है। महर्षि दयानन्द ने तो मन्त्रों का हिन्दी अनुवाद करते हुए जीवित पिता-पितामह व शिक्षा प्रदान करने वाले अध्यापकों को पित्तर माना है और उनकी सेवा सुश्रशा करने को कहा है।

आओ देखें हमारे वेद इस विषय में क्या कहते हैं।:- यजुर्वेद के दूसरे अध्याय के मन्त्र ३१-३२ व ३३ व ३४ पित्तरों समन्धी उपलब्ध है व तीसरे अध्याय का एक ५५ वां मन्त्र भी इस विषय का है।

अत्र पितरो भादयध्व यथा भागया वृष्णायध्वम्।
अभीमदन्त प्रितरो तथा भागमावृषायिषत।। यजुर्वेद २/३

अर्थात हे पित्तर तुम सब हमारे इस सत्कारयुक्त व्यवहार अथवा स्थान में यथायोग्य अपने भाग का आतिक्रमण न करके सब और आनन्द से सिंञ्चन करने वाले साँड के समान प्रसन्न रहो। हमें भी प्रसन्न आनन्दित एवम् मुदित करो। नमो व पितरो रसाय नमो व पितर: शोषाय नमो व: पितरो जीवाय नमो व: पितरो: स्वाधायें नमो व पितरो धोराय नमो व: पितरो मन्यवे नमो व: पितर: पितरो नमो वे गृहान्न: पितरो दन्त सतो व: पितरो देष्यैतद्व: पितरो वास:। यजुर्वेद २-३२।।
विद्या आनन्द के देनेवाले पितरो तुम्हारा नम्रता पूर्वक नमस्कार है, दुख: नाशकर शत्रुओं से रक्षा करने वाले तुम्हारा सरसता पूर्वक नमस्कार है, धर्म पूर्वक अजिविका व आयु का उपदेश करनेवाले तुम्हारा निर्म मानता पूर्वक नमस्कार है, अन्न, भोग, विद्या, शिक्षा, न्याय को प्रकाशित करने वाले पितरो तुम्हारा सुशीलता पूर्वक नमस्कार है, पाप और आपात को दूर भगाने वाले पितरो तुम्हारा नम्रता पूर्वक नमस्कार है, श्रेष्ठ और रक्षकों केंद्र दृष्टि से दण्ड देने वाले पितरो क्रोधत्याग पूर्वक तुम्हारा नमस्कार है, प्रतिपूर्वक पालन करनेवाले पितरो आपका सत्कार पूर्वक नमस्कार है, हे पिता सत्कार के लिए हम ज्ञान ग्रहण करें।
हे पित्तर हम उत्तम पदार्थ आपको प्रदान करें।
सेवा योग्य पितरो हमारे द्वारा दिये गये अन्न, वस्त्र को ग्रहण करें।

आद्यन्त पितरो गर्भ–कुमारं पुष्करस्तजम्।
यथेह पुरुषोड सात। यजुर्वेद २–३३।

विद्या और अन्न आदि से रक्षा करने वाले पितरो जैसे गर्भ में बच्चा सुरक्षित और संवर्धित हैं, एसे ही हमारी रक्षा और वृद्धि करो।

उर्ज्ज वहन्तीरमृतं घृतं पय: किलाले परिस्त्रुजम्।
स्वास्थ तर्पयत में पितृन/ यजुर्वेद २–३५।।

हम आपको प्रिय विविध रसों स्वादिष्ट जल, मिष्ठान्न, घी,
दूध, उत्तम भोजन, पके रसीले फल से तृप्त करते हैं।
आपकी आत्मा प्रसन्न होवें।

पुनर्न: पितरो मनोददात दैव्यो जन:।
जीवं व्रात सचेमहि।। यजुर्वेद ३–५५

हे पित्तर (अन्न, विद्या दान करने वाले माता पिता गुरु जनो) आपकी शिक्षा से हमें इस जन्म में व दूसरे जन्म में धारशावही बुद्धि प्राप्त हो।।

इस मन्त्र ३-५५ में पितर के लिए महर्षि दयानन्द ने कोष्टक में लिखे अन्न, विद्यादान करने वाले माता पिता व गुरुजन शब्दों को लिखा है। अन्यत्र कहिं भी इसका विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है। पित्तर शब्द भी पितृ गृह यानि पिता का घर के लिए पित्र और पित्तर रुप में लिखा मिल रहा है।

इसके अतिरिक्त मुक्तात्माएँ अनुकूल होने के लिए भी ऋगवेद में मन्त्र उपलब्ध है।:-

नृचक्षसो अनिमिपन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशु:।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वस्ते स्वस्तये।। ऋग१०/६१/४

महर्षी दयानन्द ने इसका भाष्य इस प्रकार किया है:-
मनुष्यों के कर्मो का निरिक्षण करने वाले, कभि आंख न मीचने वाले विद्वान लोगों ने योग्यता से बड़े अमर पद को प्राप्त किया है! जो ज्योति ज्ञान रुपी रथ पर चढ कर सर्वत्र विचरने वाले पाप से रहित लोग द्यूलोक के उच्च स्थान में निवास करते हैं। वे हमारे लिए कल्याण कारी हों। इस मन्त्र में भी हमारे पूर्वजों का आत्माओं से ही निवेदन करना प्रतीत होता है।

यज्ञ प्रक्रिया में महर्षि दयानन्द ने भी पितृयग का विधान तो किया है परन्तु कुछ मन्त्र या क्रिया करना नहीं लिखा है और ''अग्नीहोत्र के पश्चात पितृयग अर्थात जीते माता, पिता, आचार्य, गुरु, उपाध्याय आदि मान्यों की यथावत सेवा करना ही पितृयज्ञ है।।''

(भादूराम जेवलिया। ९५६०५६२४९८
नोहर ३३५५२३, हनुमान गढ (राज.)

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ८ अंक ९ (सितम्बर-२०१७)

- दयानंदाब्द : १९४, विक्रम सम्वत् : २०७४
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११८

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- • एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- • वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- • आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-
चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। **'नूतन निष्काम पत्रिका'** का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
अथ: पित्तर पूजन क्या है।	२
सम्पादकीय	३
क्या समस्त सृष्टि ईश्वर से बनी है?	४-५
विचार शक्ति का चमत्कार	५
क्या पूर्ण योगी परमात्मा के तुल्य हो जाता है?	६-७
महर्षि दयानन्द और वेद	८
युग प्रवर्तक-गुरु-शिष्य	९-१०
जाति, आयु और भोग	११-१२
समान नागरिक कानून	१३-१४
सूर्य चिकित्सा	१४
सनातन धर्म रक्षक आर्य समाज	१५-१६

सम्पादकीय

यज्ञ और परोपकार

जब भी लिखने की शुरुवात करता हूँ एक बार महर्षि के लिखे वाक्यों को याद कर लेता हू। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभावानुसार अनेकों नामों का वर्णन है। एक जगह महर्षि ने लिखा है कि यज देवपूजा संगतिकरण दानेषु इस धातु से यज शब्द सिद्ध होता है। ''यज्ञो वै विष्णु:'' (शत:१/१/८/८) यह ब्राह्मणग्रंथ का वचन है। ''यो यजती विद्वद्भिरिज्यते वा स यज्ञ:'' जो सब जगत के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्म से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम ''यज्ञ'' है। क्योंकि वह सब जगह व्यापक है। अस्तु। अग्निहोत्र की दैनिक क्रिया जब हम करते हैं तब उसमें अग्नि को प्रज्वलित करने हेतु डाली जाने घी की आहुति एवं औषधिया सामग्री का प्रभाव अग्नि स्वयं उसे सूक्ष्म करके सर्वत्र लौटाने का प्रयास करती है। इसमें अग्नि अपने स्वभाव के विपरित जाना भी चाहे तो जा नहीं सकती। उसकी व्यापकता का लाभ सबको समान रूप से सुगंध के रूप में मिलता है। इदं न मम कहते हुए आहुति डाली जाती है और अग्नि पदार्थ को शुद्धतम स्वरूप में लौटाती है बिना भेद भाव के अब देखिए महर्षि ने लिखा ईश्वर यज्ञ है क्योंकि वह सर्वव्यापक है यही क्रिया सूत्र रूप में अग्निहोत्र में है जो यह है। इस क्रिया में स्व की भावना नहीं है परोपकार की भावना है। यह यज्ञ हमें प्रेरणा दे रहा है कि हम जहां है वहीं यज्ञ करें। अग्निहोत्र जहां हो रहा है उसका प्रभाव वहीं से शुरू होकर शनै: शनै: कम होता जाता है। ठीक इसी प्रकार हम जहां हैं वहीं से परोपकार करें। अपने प्रभावी में आने वाले सेवक से हम अपने घरों, कार्यालयों में आने वाले सेवक से हम शुरूवात कर सकते हैं। अपने संपर्क में आने वालों के प्रति हमारा व्यवहार सहयोगात्मक रहे यही तो यज्ञ है। अक्सर हम अच्छे कर्म करने का संकल्प लेते हैं और मन में परोपकार की भावना रखते हैं लेकिन वह जब करेंगे तब करेंगे आज से ही अपने यज्ञ का, सेवा का, परोपकार का, अच्छाई की सुगंध फैलाने का जो यज्ञ है तो शुरू करें। यही तो यज्ञ है जो ईश्वर निरंतर कर रहा है। महर्षि की हम पर यह महती कृपा है कि उन्होंने यज्ञ को कर्मकांड तक सीमित न रखकर जीवन को यज्ञमय बनाने का आव्हान किया जो वैदिक जीवन पद्धति है। हम सुधरेंगे जग सुधरेगा की उक्ति को चरितार्थ करते हुए आओ हम सब मिलकर सिर्फ अग्निहोत्र तक अपने को सीमित न रखें अपितु अपना जीवन यज्ञमय बनाएं और अपने यज्ञमय जीवन की महक को महसूस करके स्वयं भी आनंदित हों और औरों को भी आनंदित करें।

संगीत आर्य
9323573892

क्या समस्त सृष्टि ईश्वर से बनी है?

पं. सिद्ध गोपाल कविरत्न

कमल– क्या यह सारा संसार ईश्वर का ही रुप है?

विमल– नहीं, यह संसार प्रकृति का रुप है! ईश्वर तो रुप से रहित है।

कमल– बड़े-२ बुद्धिमान् और दार्शनिक विद्वान यही कहते हैं कि सारा संसार ईश्वर से ही बना है। ईश्वर से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी और पृथ्वी से अन्न, औषधियाँ तथा अनेक प्रकार के प्राणी उत्पन्न हुए हैं।

विमल– यह बात गलत है, ईश्वर सृष्टि का उत्पत्ति कर्त्ता है स्वयं कार्य नहीं है। सृष्टि उत्पत्ति के ३ ही कारण हैं और तीनों ही पदार्थ अनादि हैं- ईश्वर, जीव, प्रकृति। यह तीनों पदार्थ अनादि हैं। ईश्वर निमित्त कारण है, प्रकृति उपादान कारण है और काल, दिशा आदि साधारण कारण हैं, क्योंकि सृष्टि के समस्त कार्यो में यह सामान्य हैं। निमित्त कारण वह है जिसके बनाने से कोई चीज बने न बनाने से न बने। उपादान कारण वह है जिसके होने से कोई चीज बने न होने से न बने। जैसे सुनार ने जेवर बनाया। अब सुनार इसमें कर्त्ता यानी निमित्त कारण हुआ और सोना उपादान कारण हुआ। सुनार के बनाने से जेवर बने न बनाने से न बनते, इसी तरह सोने के होने से जेवर बने न होने से न बनते। देखो! यदि ईश्वर से आकाश बनता तो आकाश में 'शब्द' गुण है। ईश्वर का गुण शब्द है नहीं, तो आकाश में शब्द कहाँ से आया? कारण के गुण कार्य में अवश्य आते हैं। सोने से जेवर बनायें तो सोने के गुण जेवर में अवश्य आयेंगे। जब-ईश्वर में ही शब्द नहीं है, आकाश में कहाँ से आ जायेगा? अभाव से भाव भी नहीं होता। अतएव सिद्ध है, ईश्वर से आकाश नहीं बना। इसी प्रकार आकाश से वायु नहीं बनी। क्योंकि वायु का धर्म स्पर्श है और आकाश में स्पर्श नहीं है तो स्पर्श गुण वायु में कहाँ से आ गया? वायु से अग्नि नहीं बनी, क्योंकि अग्नि का गुण रुप है और रुप वायु में है नहीं, फिर अग्नि में कहाँ से आ गया? इस प्रकार समस्त तत्वों को समझ लो। यह सब तत्व, सत, रज, तम वाली मूल प्रकृति से ही बने हैं और इन्हें निमित्त कारण परमात्मा ने ही बनाया है।

कमल– परमात्मा सृष्टि बनाने में जब प्रकृति का सहारा लेता है, तो प्रकृति का मुहताज हुआ- क्योंकि वह बिना प्रकृति के संसार नहीं बना सकता?

विमल– परमात्मा प्रकृति का सहारा नहीं लेता, बल्कि प्रकृति को ही संसार के रुप में बिना किसी का सहारा लिए कर देता है। अपना कार्य करने में किसी साधन का मुहताज नहीं है। प्रकृति साधन नहीं बल्कि 'कर्म' है जिस पर परमात्मा की क्रिया का फल गिरता है। जैसे मोहन ने सोहन को मारा, तो मोहन कर्ता है, सोहन 'कर्म' है और मारना क्रिया है। कोई कहने लगे कि मोहन सोहन को मारने में सोहन का मुहताज है। मैं पूछता हूं यह कहना क्या अक्लमन्दी की बात है? क्या बिना मोहन के सोहन को मार देना कहना ठीक बन भी सकता था? यदि मैं कहूँ मैंने कमल को पाँच रुपये दिये हैं तो कोई मुझसे कहने लगे, तुम कमल को रुपये देने में रुपयों की मुहताज कैसे? शायद तुम्हारा मतलब यही है, कि मरने वाला न हो और ईश्वर उसे मार दे। खाने वाला न हो और ईश्वर उसे खिलादे, रोने वाला न हो और ईश्वर रुलादे। प्रकृति न हो और प्राकृतिक जगत् बना दे। भला इसे पागलपन के सिवाय और क्या कहा जायेगा?

कमल– मैं तो सुनता हूँ, सृष्टि बनने के पूर्व ही ईश्वर था, और कोई पदार्थ नहीं था। उसने अपनी इच्छा से दुनिया बनाई है।

विमल– अच्छा ईश्वर ने सृष्टि क्यों बनाई? अपने लिए या अन्य के लिए? यदि कहो, अपने लिए तो मालूम हुआ, सृष्टि की जरुरत ईश्वर को थी। जिसमें जरुरत है उसे पूर्ण नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि जरुरत का होना ही अपूर्ण होने का सबूत है। यदि कहो जीवों के लिए बनाई तो ईश्वर के साथ जीव भी मानने पड़ेंगे। फिर ईश्वर ही ईश्वर था यह बात गलत हो जायेगी।

कमल– उसने अपनी लीला दिखाने के लिए सृष्टि को रचा है।

विमल– अपने लीला किसे दिखाई?

कमल– अपने आपको, अपनी लीला दिखाता है।

विमल– अपने आपको अपनी लीला दिखाता है?

कमल– अपने आनन्द के लिये लीला दिखाता है।

विमल– तो सृष्टि रुम लीला दिखाने के पहले उसमें वह आनन्द था या नहीं। यदि था, तो लीला दिखाने से आनन्द क्या हुआ? यदि नहीं था तो उसमें लीला के आनन्द की कमी तो स्वत: ही सिद्ध हो गई और जब लीला दिखाई तो सृष्टि रुप लीला के आनन्द की परमात्मा में वृद्धि हुई। जिसमें कमी और वृद्धि का दोष होता है, उस पदार्थ के गुण अनादि अनन्त नहीं होते। और जब गुण ही अनादि अनन्त नहीं है तो उनका गुणी जो ईश्वर है, अनादि अनन्त कैसे हो सकता है?

कमल– अच्छा, मैं यह मान लूँ कि लीला दिखाना उसका स्वभाव है।

विमल– ऐसे मानने में राग, द्वेष, क्षुधा, तृषा, भय, शोक, सुख दु:ख, जन्म, मरण, अन्याय, चोरी, जारी, हिंसा, व्यभिचार, आदि गुण, अवगुण सब ईश्वर की लीला के ही धर्म मानने पडेंगे, क्योंकि सृष्टि रुपी लीला में यह सारी बातें हैं। फिर संसार में पाप, पुण्य, दुराचार, सदाचार, धर्म-अधर्म कोई पदार्थ न रहेगा। सब परमात्मा के स्वभाव के अंग बन जायेंगे। फिर तो वेद शास्त्र, यम नियम आदि साधन सब व्यर्थ हो जायेंगे। मानव जीवन का उद्देश्य भी कोई न रहेगा। किसी की प्राप्ति के लिए घोर तपस्यायें की जायें और कौन उन्हें करे, जब कि ईश्वर ने अपने आपको अपने स्वभाव से ही लीला दिखाई है। फिर कौन पापी और पुण्यात्मा? कौन सा कर्म और कौन-सा कर्म फल? सब व्यर्थ!!

कमल– अच्छा आपके सिद्धान्त से परमात्मा ने सृष्टि क्यों बनाई?

विमल– जीवों के कल्याण के लिए परमात्मा सृष्टि की रचना किया करता है। वह न्यायी और दयालु है। उसके न्याय और दया का प्रकाशन सृष्टि उत्पत्ति द्वारा ही होता है उसका अपना कोई प्रयोजन नहीं, दया और न्याय करना उसका स्वभाव है।

कमल– जब परमात्मा ने जीवों के कल्याण के लिये सृष्टि बनाई है, तो उसमें दु:ख-सुख और भलाई बुराई क्यों है?

विमल– सृष्टि में जो भी भलाई बुराई मालूम देती है और सुख दु:ख मालूम देता है वह वास्तव में जीवों के अपने कर्मों का परिणाम है। जीव अपनी अज्ञानतावश सृष्टि में दु:ख उठाता है। अन्यथा न सृष्टि में कोई बुराई है और न कोई दु:ख है। जीव अपनी अल्पज्ञता के कारण विपरीत कर्म करके दु:ख उठाते हैं और परमात्मा के न्यायानुसार अनेक योनियाँ धारण करते हैं। परमात्मा दु:ख किसी को नहीं देता। दु:ख का कारण अज्ञान है, वास्तविकता का न समझना है।

कमल– क्या जीव परमात्मा ने नहीं बनाये?

विमल– जीव अनादि है।

कमल– जब जीव और प्रकृति ईश्वर ने नहीं बनाये तो उसने इन पर अधिकार क्यों किया?

विमल– यह प्रश्न ऐसा ही है, जैसे कोई पाठशाला में विद्यार्थियों को देखकर कहे कि जब मास्टर ने इन विद्यार्थियों को पैदा नहीं किया तो इन पर अपना अधिकार क्यों रखता है? जब प्रकृति अज्ञ, जीव अल्पज्ञ और परमात्मा सर्वज्ञ है, तो दोनों वस्तुओं पर सर्वज्ञ का प्रभाव स्वभाव से रहेगा। जैसे पाठशाला में विद्यार्थियो पर मास्टरों का नियन्त्रण होना विद्यार्थियों की उन्नति का कारण है वैसे ही सृष्टि रुपी पाठशाला में जीवों का ईश्वराधीन रहना जीवों की उन्नति का कारण है। परमात्मा रुपी मास्टर के वेद ज्ञान द्वारा जीव लौकिक और पारलौकिक उन्नति सम्पादित करते हैं।

कमल– यदि यह मान लें कि जीवों को भी परमात्मा ने बनाया है, तो क्या आपत्ति आती है।

विमल– ऐसा मानने पर जीव कर्म करने में स्वतन्त्र न रहेगा दूसरे भले बुरे कर्मों की जिम्मेदारी ईश्वर पर ही रहेगी। जीव पाप का भागी न माना जायेगा, क्योंकि जीव को परमात्मा ने बनाया और भले बुरे कर्म करने की उसमें योग्यता रखी, तभी भले बुरे कर्म किये तो उसका अपना दोष क्या हुआ? जीव को बनाने के पहिले उसमें यह योग्यता रखता कि बुरे कर्म वह कर ही न सकता। अतएव जीव अनादि है और कर्म करने में स्वतन्त्र है और परमात्मा की व्यवस्था से कर्म फल भोगने में परतन्त्र है।

कमल– कुछ लोग कहते हैं, जीव ब्रह्म का ही अंश है?

विमल– अंश, अंशी का भाव सावयव यानी साकार और अनित्य पदार्थो में होता है। जीव ब्रह्म दोनों तत्व अनादि है।

कमल– कुछ कहते हैं, जीव ब्रह्म से ही बना है और अन्त में ही ब्रह्म में लय हो जायेगा।

विमल– ऐसा मानने पर जीव अनादि और सनातन नहीं रहता। हमेशा कार्य कारण में लय होता है, जैसे मिट्टी रुप कारण में घड़ा रुपी कार्य लय हो जाता है। जीव ब्रह्म का कार्य नहीं है। वह स्वतन्त्र और नित्य है। जो नित्य है वह अपनी सत्ता खोकर किसी में लय कैसे हो जायगा।

कमल-जीव है तो ब्रह्म ही, अपने को अज्ञानता से जीव समझता है?

विमल- इससे तो यह सिद्ध होता है, कि ब्रह्म में भी अज्ञान है। जब ब्रह्म ही अज्ञानता के वश जीव बना है तो फिर ज्ञान किससे प्राप्त करेगा? ब्रह्म से तो नहीं कर सकता, क्योंकि ब्रह्म तो अज्ञान के काबू में आया हुआ है।

कमल– क्या ब्रह्म से जीव नहीं बना? क्या अन्त में जीव ब्रह्म न बनेगा?

विमल– जो बनता है, वह ब्रह्म नहीं होता, ब्रह्म तो बे बनी वस्तु है, इसी तरह जीव भी नहीं बनता तभी तो दोनों तत्व नित्य हैं।

कमल– कुछ लोग कहते हैं, यह संसार मिथ्या है ब्रह्म ही सत्य है, माया को अनिर्वचनीय कहते हैं। क्योंकि माया तीनकाल में एक रस रहती नहीं, इसलिए सत् उसे कह नहीं सकते। और असत् इसलिए नहीं कहते कि उसका संसार में काम दिखाई देता है।

विमल– संसार न सत् है न असत् है बल्कि अनित्य है, अर्थात् बदलने वाला है जो लोग माया को अनिवर्चनीय कहते हैं उनसे पूछना चाहिए कि माया को किसी प्रमाण से मानते हो या बिना प्रमाण के ही मानते हो? यदि प्रमाण से मानते हो, तब तो माया प्रमेय हो गई क्योंकि प्रमाता ने प्रमाण से जान लिया, उसका निर्वचन हो गया। यदि कहे बिना प्रमाण को मानते हैं तो 'माया है' यह जाना कैसे? इस लिए माया अर्थात् प्रकृति के कार्य अनित्य हैं और प्रकृति नित्य है।

विचार शक्ति का चमत्कार

स्वाभाविक्ता व नैमिक्ता साथ साथ चलते हैं। हमारे अंदर शक्तियाँ स्वाभाविक रूप से व्याप्त रहती हैं। भावनाओं से ये शक्तियाँ नैक्तिक शक्तियों में परिवर्तित होती हैं। यानि कि चलायमान होती है। शक्तियों का स्वरुप हर जगह एक जैसा ही होता है लेकिन उनका उपयोग अलग अलग प्रकार से होता है। जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग, द्वेश, भय, अहंकार ये सभी एक प्रकार की शक्तियाँ हैं, इनका सही या गलत उपयोग हमारी विचार शक्ति पर निर्भर करता है। उपयोग भी नैतिक्ता का एक उदाहरण है। आपने मंदिरों या अन्य जगहो के गुम्मदो पर झंडे लगे रहते हैं, उनके लहराने से शक्तियों का संचालन होता है। केवल धन दौलत, भौतिक सुख सुविधाएं व अन्य प्रकार के सुख प्राप्त कर लेना ही समाधान नही है या फिर शान्ति व आध्यात्मिक शक्तिपात होना समाधान नहीं है, बल्कि ये प्राप्तिया क्यों हुई हैं उसका कारण जानना असली समाधान है। और यह समस्या व समाधान कारण शरीर में स्थित है जिसके मानसिक रुकावट, मानसिक मय व मानसिक असंतोष विशेष घटक हैं। यदि इस कारण शरीर को नहीं समझ पाए तो यह सारे सुख व शक्तिपात पलायन हो जाएंगे। स्थिर नहीं रह पाएंगे। जीवन में अप्राप्ति की प्राप्ति, प्राप्त की रक्षा व उपभोग और पुन: नये सिरे से प्राप्ति की ओर अग्रसर हो जाना। यह क्रम निरंतर चलता रहता है। विचार शक्ति इस कारण शरीर का प्रतिबिंब है। इस कारण शरीर के घटक, अवयव या इसके स्वरुप को समझना अत्यंत आवश्यक है। विचार शक्ति का दूसरा नाम कारण शरीर मी है जो कि मन, बुद्धि, चित्त व अहम् तत्व में व्यापक रुप से स्थित रहती है। इसका विस्तार से विश्लेषण अगले अंक में करने का प्रयास करेंगे। धन्यवाद।

राजकुमार भगवतीप्रसाद गुप्त
उपप्रधान, आर्य समाज, वाशी

क्या पूर्ण योगी परमात्मा के तुल्य हो जाता है ?

स्वामी सत्यपति परिव्राजक

योग में सातवीं भ्रान्ति यह है कि योगी परमात्मा के तुल्य सर्वज्ञ हो जाता है। कुछ लोगों की यह मान्यता है कि जब योगाभ्यास करते-करते योग की ऊँची स्थिति आ जाती है, तब योगी परमात्मा के सदृश सर्वज्ञ हो जाता है। जिस प्रकार से एक समय में परमात्मा समस्त संसार के पदार्थो के गुण कर्म और स्वभावों को जानता है, उसी प्रकार योगी भी जानता है।

प्रथम इस विषय पर विचार करना उचित समझता हूँ कि ईश्वर की सर्वज्ञता किस प्रकार की है? वर्तमान काल में जितने भी विश्व में पदार्थ हैं, उन सबके, गुण, कर्म, स्वभावों को ईश्वर एक साथ जानता है। और जो कुछ भूतकाल में हो चुका है, उसको भी जानता है तथा भविष्यत् काल में जो भी कुछ हो सकता है, उसकों भी अच्छे प्रकार से जानता है। यह है ईश्वर की सर्वज्ञता।

प्रश्न – कुछ लोगों का कहना है कि जो कुछ भविष्यत् काल में जीव करेगा और जिस समय करेगा उसको ईश्वर प्रथम ही जानता है कि अमुक जीव अमुक कर्म इस समय करेगा, आगे पीछे नहीं?

उत्तर– यह लोगों की मान्यता भ्रान्ति-युक्त है कि बात जीव के ज्ञान में नहीं आई है और आने वाली बीसवी सृष्टि के मध्यकाल में आयेगी, उसको ईश्वर किस प्रकार से जान सकता है ? इस विषय में मैं 'दयानन्द सन्देश' में एक लेख इससे पूर्व लिख चुका हूँ। जो सज्जन देखना चाहें वहाँ पर देख सकते हैं।

अब इस विषय पर विचार किया जायेगा कि योगी परमात्मा के तुल्य सर्वज्ञ क्यों नहीं होता ?

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी सत्यार्थप्रकाश के ९ समु. में लिखते हैं कि-(क) **''जीव मुक्त होकर भी शुद्धस्वरूप, अल्पज्ञ और परिमित गुण, कर्म, स्वभाव वाला रहता है, परमेश्वर के सदृश कभी नहीं होता''।** स्वामीजी महाराज १२ वें समु. में लिखते हैं (ख) 'जीव चाहे जैसा अपना ज्ञान और सामर्थ्य बढ़ावे तो भी उसमें परिमित ज्ञान, ससीम सामर्थ्य रहेगा'।

समस्त संसार के ज्ञान की बात तो दूर रही इस शरीर के विषय में ऋषि १२वें समु. में लिखते हैं (ग) - ''देखो ! चाहे कोई कितना ही सिद्ध हो तो भी शरीरादि की रचना को पूर्णतया नहीं जान सकता।'' (घ) ''जो अल्प और अल्पज्ञ है, वह सर्वव्यापक और सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जीव का स्वरूप एकदेशी और परिमित गुण, कर्म, स्वभाव वाला होता है। वह सब विद्याओं में सब प्रकार यथार्थ वक्ता नहीं हो सकता। इसलिये तुम्हारे तीर्थकर परमेश्वर कभी नहीं हो सकते।'' (सत्यार्थप्रकाश १२ समु.)

जैनी लोग जीवों से भिन्न सर्वव्यापक, सर्वज्ञ ईश्वर को नहीं मानते । किन्तु जीव साधना करते-करते सर्वज्ञ हो जाता है। उसी को ईश्वर मानते है। इस जैनियों की निराधार मान्यता का खण्डन करते हुये स्वामी दयानन्द सरस्वती जी लिखते हैं- (ङ) '(क्लेश० योग० १।२४) जो अविद्यादि पाँच क्लेश, अच्छे और बुरे कर्मो की जो वासना, इन सबसे जो सदा अलग और बन्धनरहित है, उसी पूर्ण पुरुष को ईश्वर कहते हैं। फिर वह कैसा है? जिससे अधिक वा तुल्य पदार्थ कोई नहीं तथा जो सच्चिदानन्द, ज्ञानस्वरूप, सर्वशक्तिमान है, उसी को ईश्वर कहते है। क्योंकि (तत्र निरतिशय० १।२५। जिसमें नित्य सर्वज्ञान है, जिसके ज्ञानादि गुण अनन्त है, वही परमेश्वर है। और जीव के सामर्थ्य की अवधि प्रत्यक्ष देखने में आती है''। (ऋ. भू. उपासना विषय)

ऋषि के इन शब्दों से जीव का सर्वज्ञ न होना सिद्ध है। क्योंकि ईश्वर के ज्ञानादि गुण अनन्त है, जो ज्ञानादि गुणों को पराकाष्ठा है, जिसके सामर्थ्य की अवधि नहीं है। और जीव के सामर्थ्य की अवधि प्रत्यक्ष देखने में आती हे अर्थात् जीव में ज्ञानादि गुण अनन्त कभी भी नही होते।

योगदर्शन ।१।२५।) के **तत्र निरतिशयं सर्वज्ञवीजम्** सूत्र पर भाष्यकार व्यास ऋषि लिखते हैं- **''यत्र काष्ठाप्राप्तिज्ञानस्य स सर्वज्ञः स च पुरूषविशेष इति''।** जिसमें अनन्त ज्ञान है वह सर्वज्ञ है और वह पुरुष-विशेष है।

यदि योगी ईश्वर के समान सर्वज्ञ हो जाता तो व्यास जी यह न लिखते कि जिसमें ज्ञान की पराकाष्ठा है, वह पुरुषविशेष ईश्वर है। यदि योगाभ्यास के द्वारा योगी ईश्वर के समान सर्वज्ञ हो जाता है, तो वह पुरुष-विशेष ईश्वर नहीं कहला सकता। क्योंकि उसके अनुसार उस जैसे सर्वज्ञ अनेक जीव भी हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि व्यास जी भी योगी को ईश्वरवत सर्वज्ञ नही मानते। च) स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश के स्वमन्तव्या- मन्तव्य-प्रकाश में लिखा है ''ग्यारह सौ सत्ताईस वेदी की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ है, उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इन में वेद-विरुद्ध वचन है, उनका अप्रमाण करता हूँ।''

ब्रह्मादि अनेक ऋषि हुये हैं। उनमे से अनेक ऋषियों ने वेद के अङ्गोपांगो की रचना की है और उन ग्रन्थों के रचयिता योगी थे। जैसे कि व्यास जी को ऋषि दयानन्द जी ने योगी लिखा और उन्होंने वेदान्त दर्शन की रचना की है। इसी प्रकार अनेक सिद्ध योगियों ने ग्रन्थ लिखे है। यदि वे सिद्ध योगी ईश्वरवत् सर्वज्ञ होते, तो उनके रचे ग्रन्थों के विषय में ऋषि दयानन्द जी यह नहीं लिखते कि ''वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमे वेद-विरूद्ध वचन है उनका अप्रमाण करता हूँ।'' यदि ईश्वर के समान योगी सर्वज्ञ होता तो उनके सर्वज्ञ होने से उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों में वेद विरुद्ध वचन नहीं हो सकता और ऋषि दयानन्द जी उन ग्रन्थो को भी वेद के तुल्य स्वतःप्रमाण मानते। अतः इससे यह सिद्ध होता हे कि चाहे कोई कितना ही सिद्ध योगी हो, तो भी वह परमात्मा के तुल्य सर्वज्ञ नही हो सकता।

प्रश्न– जीव परमात्मा के सदृश सर्वज्ञ क्यों नही होता?

उत्तर– एकदेशी होने से जीव ईश्वर के समान सर्वज्ञ नहीं हो सकता। इसमें यह प्रमाण है महर्षि दयानन्द लिखते हैं-

प्रश्न-जीव शरीर में भिन्न विभु हे वा परिच्छिन्न?

उत्तर- परिच्छिन्न! जो विभु होता तो जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, मरण, जन्म, संयोग, वियोग, जाना, आना नहीं हो सकता।

(सत्यार्थ० ७ समु०)।

यदि जीव परमात्मा के समान व्यापक होता तो जो जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था देखने में आती है, ये न होती। क्योंकि सुषुप्ति अवस्था मे मन तथा इन्द्रियों से जीव का सम्बन्ध टूट जाता है और उस सम्बन्ध के न रहने से बाहर के पदार्थों का ज्ञान जीव को नहीं हो पाता। जीव के सर्वव्यापक होने से यह सम्बन्ध सदा बना रहेगा और सर्वदा सब व्यवहारो का ज्ञान भी ज्यों का त्यों बना रहेगा। परन्तु सुषुप्ति अवस्था में किसी जीव को बाहर के व्यवहार का परिज्ञान नहीं रहता। अत: यह बात सिद्ध है कि जीव सर्वत्र सृष्टि में ईश्वरवत् व्यापक नहीं है। इसी प्रकार से मरना, जन्म लेना, संयोग-वियोग, जाना-आना, आदि व्यवहार सर्वव्यापक मे नहीं हो सकते।

और जीव की विभुवाली मान्यता में यह भी दोष है कि दूसरे जीवों के शरीर और मन में होने वाले सुख-दु:खों को कोई एक जीव नहीं जानता अर्थात् एक मनुष्य भारत में रहने वाला अमरीकादि देशों के सुख-दु:ख नहीं जानता। यदि वह भारत में रहने वाला जीव समस्त संसार के जीवो के शरीर में भी विद्यमान है तो उसको सब शरीरों के व्यवहार का पता होना चाहिये। किन्तु ऐसा होता नहीं। इससे सिद्ध है कि जीव सर्वव्यापक नही है। और सर्वव्यापक न होने से सर्वज्ञ नहीं हो सकता। तथा जीव के लिये जहा पर सर्वज्ञ शब्द का प्रयोग हुआ है, उसको देखकर भी लोगो को यह भ्रम हुआ है कि जीव भी सर्वज्ञ हो जाता है। जैसे कि न्यायदर्शन के वात्स्यायन भाष्य में आया है- तत्रात्मा सर्वस्य द्रष्टा सर्वस्य भोक्ता सर्वज्ञ सर्वानुभवी। (न्याय० १।१।९ सूत्र) यहां पर जीव के लिये जो सर्वज्ञ शब्द का प्रयोग हुआ है, वह इसलिये नही हुआ कि जीव समस्त संसार के पदार्थो को पूर्णरूपेण जानता है। इस भाष्य का अभिप्राय यह है कि सब इन्द्रियों और मन के व्यापार को सम्पूर्णता से जीव जानता है अभिप्राय यह है कि सब इन्द्रियो और मन के व्यापार को सम्पूर्णता से जीव जानता है अर्थात किस इन्द्रिय से किस विषय का ज्ञान होता है, कितने विषय है? भोग का आयतन-आश्रय यह शरीर है। इन सबको जानने वाला यह जीव है। अत: इसको सर्वज्ञ कहा गया है। योग-दर्शन में भी ऐसे शब्द आये है, जिनको देखकर कुछ लोगों को भ्रम होता है कि जीव योगी बनकर परमात्मा के सदृश सर्वज्ञ हो जाता है। जैसे-

(क) सत्त्वपुरुषान्यतारुयानिमात्रस्य
सर्वभावाधिष्ठातृत्वंसर्वज्ञातृत्वञ्च (योग० ३।४९)

इस सूत्र में 'सर्वज्ञातृत्व' शब्द आया है। उसका अभिप्राय यह है कि शान्त, उदित, अव्यपदेश्य धर्म वाले गुणों को एक समय में जानता है। सत्त्व, रज, तम, इन तीनों के व्यापार को अच्छे प्रकार से जानता है। इस ज्ञान के उदय होने पर वह अपने आपको प्रकृति से भिन्न जानता हुआ गुणों पर अधिकार प्राप्त कर लेता है। यदि इस सूत्र में आये हुये '**सर्वज्ञातृत्व**' पद का अर्थ -गुणों के सम्पूर्ण व्यवहार को जानता है। इस शब्द का सत्यार्थ समझने के लिए पूर्वापर प्रसंग को भी समझना आवश्यक है। यदि इस सूत्र में आये '**सर्वज्ञातृत्व**' पद का अर्थ यह लिया जाय कि योगी ईश्वरवत् सर्वज्ञ हो जाता है, तो सूत्रकार उस सर्वज्ञता को छोड़ने के लिए यह सूत्र न बनाता- **तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्** (यो० ३।५०) (तद्वैराग्यादपि०) उस सर्वज्ञातृत्व से भी वैराग्य होने पर और दोषबीज के विनाश होने पर मोक्ष हो जाता है। यदि वह सर्वज्ञता ईश्वर के तुल्य होती, तो उससे वैराग्य होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

(ख) योगदर्शन में दूसरा' 'अनन्त्य' शब्द का प्रयोग आया है। जैसे - तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्या ज्ज्ञेयमल्पम् (योग० ४।३१) इस सूत्र में आये 'अनन्त्य' शब्द को देखकर यह भ्रम हो जाता है कि योगी का ज्ञान ईश्वर की तरह अनंत हो जाता है। वास्तव में 'अनन्त्य' शब्द का प्रासाङ्गिक अर्थ है 'अधिक'। जब साधनो का अनुष्ठान करता हुआ योगी ऊँची अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तो उसका ज्ञान इतना अधिक हो जाता है कि उस योगी के लिये जो ज्ञातव्य है, वह अत्यन्त सरल हो जाता है। जैसे कि लोक में साधारण लोगो से कठिनाई से होने वाला कार्य अधिक बलवान् के लिए बहुत सरल होता है। साधारण लोगों से बड़ी बाधा से जाना गया विषय योगी के लिए अत्यन्त सरल होता है। इसलिए इसका अभिप्राय यही है कि योगी के लिए ज्ञातव्य विषय-हेय, हेयहेतु, हान और हानोपाय है। इसको जानना योगी की दृष्टिमें थोड़े प्रयाससे साध्य होता है। अत: इस भाव से यहाँ 'अनन्त्य' शब्द का प्रयोग हुआ है।

प्रश्न– योगी को परमात्मा के समान सर्वज्ञ मान भी लिया जाय तो क्या हानि है?

उत्तम– कोई भी एक मिथ्या मान्यता स्वीकार करने पर उसकी सिद्धि के लिए दूसरी मिथ्या मान्यता और खड़ी करनी पड़ती है। जैसे कि किसी ने **'एक ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है'**, इस मान्यता को खड़ा किया, तो इसकी सिद्धि के लिए अनेक निराधार मान्यतायें बना डाली और बहुत से ग्रन्थ लिखकर सहस्रों, लाखों लोगों को भ्रम में डालकर मनुष्य-जीवन के फलों से वञ्चित कर दिया। कुछ लोगों ने योगी को सर्वज्ञ स्वीकार कर लिया, तो पुन: उसकी उपासना भी करने लगे। संसार के अन्दर अनेक लोग ऐसे भी है जो कि अपने गुरुओं की ही उपासना करते हैं और उसी में मुक्ति समझते हैं।

कुछ लोग अपने गुरुओं को ही सिद्ध होने पर ईश्वर मानते हैं। परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते। यह जीव को सर्वज्ञ मानने का ही परिणाम है। क्योंकि वे यही कहते हैं कि जीव साधना करते-करते ईश्वर बन जाता है। इसलिये वे उसी की उपासना करते और करवाते हैं। वे स्वयं तो अज्ञान-अन्धकार में पड़े ही हैं, परन्तु अपने अनुयायियों को भी अविद्या में फसा रहे हैं। इस प्रकार योगी को परमात्मा के तुल्य सर्वज्ञ मानने पर अनेक अनर्थ हुये हैं और होंगे भी। अत: सब सज्जनों को चाहिये कि इस निराधार मान्यता का परित्याग करे और करावे, जिससे विद्या की वृद्धि और अविद्या का नाश हो सके।

(साभार -योग मीमांसा)

"महर्षि दयानन्द और वेद"

खुशहालचन्द्र आर्य

महर्षि दयानन्द का वेदों पर बड़ा अटूट विश्वास था। वे वेदों को ईश्वरी-ज्ञान व सब सत्य विद्याओं के ग्रन्थ मानते थे। साथ ही उन का यह पूर्ण विश्वास था कि यदि विश्व में कभी सुख व शान्ति स्थापित हो सक्ती है, तो वह वेदों के अनुसार चलने से ही हो सकती है। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नही। कारण उनकी यह मान्यता थी कि ईश्वर ने सृष्टिके आदि मे चार ऋषियों जिनके नाम अग्नि, वायु आदित्य व अंगीरा थे उनके मुख से चार वेद जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद हैं, उच्चारित करवाये जिनके ईश्वर ने वैसे तो प्राणी-मात्र के लिए, नही तो विशेष कर मनुष्य-मात्र के लिए बनाये जिनमें बताया है कि मनुष्य को क्या काम करने चाहिए और क्या काम नहीं करने चाहिए जिससे वह धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थों को धर्म के अनुसार करते हुए अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त कर सके जिसके पाने के लिए जीवको ईश्वर धरती पर भेजता है। इसी लिए जिस प्रकार श्री राम को धनुष वाला बोलते हैं, भगवान श्री कृष्णको बन्सिवाला बोलते हैं। उसी प्रकार महर्षि दयानन्द को वेदोंवाला बोलते है। महर्षि दयानन्द की वेदों सम्बन्धी निम्न लिखित मान्यताएँ थी:-

१-वेद, ईश्यरीय- ज्ञान है:- महर्षि जी के आने से पहले वेदों को ऋषि-मुनियों द्वारा बनाए हुए ग्रन्थ मानते थे।/परन्तु महर्षि दयानन्द ने अपने सद्गुरु बिरजानन्द की गोद में अन्दाज तीन साल बैठकर सही व्याकरण पतञ्जली कृत महाभाष्य और अष्टाध्यायी पढ़कर वेदों के मन्त्रों का सही अनुवाद करना सीख लिया, जो पहले आचार्य सायण, महिपार वडव्वट आदि ने वेदों के मन्त्रों का गलत अर्थ लगाकर उनको केवल कर्म काण्ड के ग्रन्थ समझत थे और हिंसा पटल व अश्लील अर्थ लगा दिये थे जिससे लोगोंकी वेदों के प्रति अश्रद्धा हो गईथी और उन्हें केवल गडरिओ के गीत समझने लगे थे। महर्षि जी ने वेद मन्त्रो के प्रसंग को समजकर सही अर्थ लागाये जिससे यह ज्ञान हुआ कि वेदों को ईश्वर ने बनाया है। मनुष्यों में वेद-मन्त्रों को बनाने की क्षमता ही नहीं है। यह महर्षि जी का मनुष्य मात्र पर एक बहुत बड़ा उपकार है जिसे भूलना नहीं चाहिए।

२-वेद, सब सत्य विद्याओं का पुस्तक हैं:- महर्षि दयानन्द का मानना था कि वेदों में सब सत्य विद्याएँ है। पहले के वेद भाष्यकार वेदों को केवल कर्म काण्ड के ग्रन्थ ही मानते थे। उनको अनादि न मानकर उनके इतिहास व हिंसा यानी पशु बलि का वर्णन भी है, ऐसा मानते थे। परन्तु महर्षि जीने वेदों को सृष्टि के आदि में ईश्वर का दिया हुया ज्ञान है जो सब सत्य विद्याओं का संग्रह है जिनके अनुसार चलने से ही मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है, ऐसा, बताया।

३-वेद-ज्ञान मनुष्यों के लिए संविधान के रुप में है:- जिस प्रकार एक राष्ट्र के लिए उसका कोई संविधान होता है, उसी के अनुसार चलने से राष्ट्र उन्नति व समृद्धि कों प्राप्त होता है। उसी प्रकार ईश्वर ने वेद-ज्ञान मनुष्योंको संविधान के रुपमें दिया है, जिसको पढ़कर तथा उस को अपने जीवन में उतारकर मनुष्य अपनी उन्नति तथा दूसरों की उन्नति करता हुआ, मोक्ष को प्राप्त कर सके जो जीवका अन्तिम व मुख्य उद्देश्य है। यहां यह बतलाना भी आवश्यक है कि मोक्ष क्या चीज है? जो मनुष्य अपने पूरे जीवन में केवल परोपकार के काम किये हैं, जिनका खाना पीना, उठना, सोना-जागना सब कार्य पर हित के लिए होते हैं जैसे भगवान् श्रीकृष्ण व महर्षि दयानन्द का जीवन था। ऐसे महापुरुष मृत्यु के बाद मोक्ष को प्राप्त होते हैं। और अनन्त काल तक ईश्वर के सान्निध्य में रहते हुए परम आनन्द को पाते हैं।

४- वेदोंनुसार चलने से ही विश्व का कल्याण है:- जब तक विश्व में वेदों का पढ़ना-पढ़ाना प्रचलित था, तबतक विश्व में परस्पर प्रेम था और सब लोग आनन्द व सुख से अपना जीवन आपन करते थे/ महाभारत से करीब एक हजार वर्ष पहले वेदोंका पठन-पाठन कम हो गया। और महाभारत में अधिकतर विद्वान्, योद्धा, आचार्य, पुरोहित आदि समाप्त हो जाने से वेदों का पठन-पाठन प्राय: लुप्त ही हो गया, तभी से विश्व में अज्ञान, अन्धविश्वास व पाखण्ड का बोल-बला हो गया। ईश्वर की असीम कृपा से सन् १९०० वी शताब्दी में महर्षि दयानन्द इस धरती पर आये। उन्होंने अपने बहुत कठोर परिश्रम से सद्गुरु स्वामी बिरजानन्द को ढूंठा और उसकी गोद में करीब तीन साल बैठकर व्याकरण पर पूरा अधिकार जमाया और फिर वेदों के सही अर्थ करके यह सिद्ध कर दिया कि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है और सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। इसी को पढ़कर और उसी के अनुसार चलकर हम अपना व विश्वका कल्याण कर सकते हैं। इसी में ईश्वर के मानव-मन्त्र को एकता का पाठ पढ़ाया है और पृथ्वी हम्हारी माता है हम सभी उसी के पुत्र व पुत्रियां हो "माता भूमि: पुत्रोहम् पृथिव्या:" कहकर भ्रातृ भाव का पाठ पढ़ाया है और विश्व में शान्ति बनाये रखने का पाठ पढ़ाया है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" कहकर पूरे विश्व को एक परिवार बताया है। ऐसा एकता का सन्देश वेदों के अलावा और कहाॅ मिल सकता है? अर्थात कहीं नहीं।

५- वेदों में अन्धविश्वास नहीं है।:- वेदों में भूत-प्रेत, जादू-टोना, गण्डा-दोरी, सगुन-अपसगुन, फलित ज्योतिष आदि नही हैं। परन्तु वेदों का पठन-पाठन कम हो जाने से स्वार्थी, मुर्ख व कम पढ़े लोगों ने इनका भय बिठा दिया जिससे अज्ञान, अन्धविश्वास व पाखण्ड का बोल-बाला हो गया। महर्षि जी ने वेदों के आधार पर कहा कि भूत-प्रेत कोई योनि ही नहीं है। उन्होंने बताया कि भूत बीते हुए को कहते है और प्रेत, मरे हुए शव को कहते है इसलिए भूत-प्रेत बोलना चालु हो गया। वास्तव में भूत-प्रेत कोई योनि नहीं है। दूसरा अन्धविश्वास व पाखण्ड मूर्ति पूजा और अवतारवाद है। अवतारवाद के लिए लोगों की मान्यता है कि जब धरती पर अन्याय बढ़ जाता है तब अन्याय को नष्ट करने के लिए ईश्वर किसी न किसी रूप में अवतार लेता है। जैसे रावण अन्यायी को मारने कै लिए राम का अवतार लिया और कंस अन्यायी को मारने के लिए कृष्ण के रुप में अवतार लिया। महर्षि दयानन्द ने कहा कि ईश्वर सर्वव्यापी, निराकार, अजर व अमर है। अवतार लेने के लिए ईश्वर के सर्व व्यापी न रहकर एक स्थान व्यापी होना पड़ेगा। निराकार न हो कर साकार होना पडेगा और मनुष्य का शरीर धारण

सेष पृष्ठ १० पर

युग प्रवर्तक-गुरू-शिष्य

पं. उम्मेद सिंह विशारद
मो. : 9411512019 / 9557641800

गुरू स्वामी विरजानन्द जी एवं योग्य शिष्य दिव्य विभूति दयानन्द सरस्वती जी सत्य वैचारिक, आध्यात्मिक सामाजिक सुधार व स्वतन्त्रता क्रान्ति के पुरोधा

गुरु श्री दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती

सोते संसार को जगाने वाले महर्षि दयानन्द के गुरु विरजानन्द जी का नाम इतिहास के स्वर्ण अक्षरों में उल्लेखनीय हैं। आपने ही संसार को अज्ञान गर्त्त में पड़ने से बचाया और अस्त हुए, वेद सूर्य को फिर से संसार में चमकाया। जब तक सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशवान है, तब तक मानव आकाशमण्डल में विरजानन्द सूर्य भी चमकता रहेगा।

वेद श्रोत की खोज गुरु विरजानन्द जी ने की थी। ऋषि मुनियों के प्राचीन संसार को वास्तिविक श्रोत्र वेद की वास्तिवीकता को कैसे जान सकते थे, श्री विरजानन्द ने पारस पत्थर के सददश्य अष्टाघ्यायी-महाभाष्य-निघन्टु- और निरूक्त शास्त्रों की खोज। इसलिए गुरु विरजानन्द जी का नाम संसार के इतिहास में सदैव सम्मान पूर्वक लिया जायेगा। इसके कारण ही संसार को पता चला कि वेदों में मूर्ति पूजा, मनुष्य पूजा, अग्नि और महाभूतों की पूजा नहीं है। ऋषियों की भाषा और वेदों के अर्थ समझने के लिये प्रत्येक अन्वेषक को इस पारषमणि की आवश्यकता है। इन शास्त्रों के बिना, विद्वान मैक्समूलर महीधर विलसन आदि ने वेद भाष्य किये वह अन्धकार मय लोह काल में ले जाते हैं।

यह उस ब्रह्म ऋषि विरजानन्द जी की जीवन गाथा है, जिनका जन्म १७७९ में पंजाब में करतारपुर के निकट हुआ था। ५ वर्ष की आयु में ये चेचक के कारण नेत्र दृष्टि में हीन हो गये थे, और १३ वर्ष की आयु में माता-पिता की छत्र छाया से वंचित हो गये थे। इन समस्त बाधाओं के होते हुए भी उन्होंने साहस व धीरज का पल्लू नहीं छोड़ा और अपने युग के संस्कृत व्याकरण के अद्वितीय विद्वान बने।

अष्टाध्यायी अध्ययन का पुनरूद्धार करने और आर्य पद्धति का पुन: अविष्कार करके इतिहास में अपना स्थान बनाया। वे राष्ट्रभक्ति निभर्यता और आत्म सम्मान की साक्षात दिव्य मूर्ति थे। उन्होंने यूगों पश्चात वेदों को स्वत: प्रमाण घोषित किया, और विश्व को महर्षि दयानन्द जैसा शिष्य दिया।

स्वामी विरजानन्द जी के चित्त में एक बड़ी भारी चिन्ता बना रहती थी। वह यह थी कि संसार का उद्धार किस प्रकार से हो सकता है। स्वामी जी का अनेक राजा महाराजाओं से सम्बन्ध था। वे उनको आर्ष वैदिक धर्मावलम्बी बनाना चाहते थे। वह समझते थे कि राजा लोग सुधर जाए तों प्रजा का सुधार सरल है। साथ-साथ ही भारत का परतन्त्रता रूपी कण्टक भी उनके हृदय को बहुत कलेश देता रहता था। वे वह इसी चिन्ता में रहते थें, कि प्रिय भारत को परतन्त्रता से कैसे मुक्त करायें किस प्रकार से फिर संसार में वैदिक धर्म का प्रसार हो।

स्वामी विरजानन्द के हृदय पर आर्ष ग्रन्थो का गहरा प्रभाव

स्वामी विरजानन्द जी का एक दक्षिणात्य ब्राह्मण पडोसी था जो अष्टाध्यायी का पाठ किया करता था। एक दिन उसके पाठ को स्वामी जी ने ध्यान से सुना। जब उन्हें ''अजाद्युक्ति'' सद में अपने पक्ष को पुष्ट करने वाला प्रबल प्रमाण अष्टाध्यायी का सूत्र ''कृर्तुकर्मणो कृति (२१३, ६४) मिला'' तक स्वामी जी के हृदय में हर्ष का पारावार न रहा। उसी दिन से स्वामी जी के हृदय में कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों के प्रति प्रबल घृणा उत्पन्न हो गयी, और तत्काल ही अपनी पाठशाला से अनार्ष ग्रन्थों का बहिष्कार कर दिया और अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि आर्ष ग्रन्थो को पढाने लगे। अर्थात संसार में व्याकरण के दो ही सत्य ग्रन्थ है, एक अष्टाध्यायी और दूसरा महाभाष्य। इनके अतिरिक्त और जो पुस्तके है वे सब अनार्ष लीला मात्र है। स्वामी विरजानन्द जी को आर्ष ग्रन्थों के प्रचार की ही एक धुन थी। आर्ष ज्ञान का यह सूर्य संसार में फिर चमकने लगा।

स्वतन्त्रता संग्राम के सूत्रधार स्वामी विरजानन्द

१९१४ विक्रमी तदानुसार १८५७ ई. में जो स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा गया उसके जन्म दाता महर्षि विरजानन्द जी महाराज ही थे। क्योंकि जिन राजाओं ने उस स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया वे स्वामी विरजानन्द जी के शिष्य थे। स्वामी विरजानन्द जी को इस पवित्र कार्य में प्रेरणा करने वाले उनके गुरु श्री पूर्णानिन्द सरस्वती जी थे। यह नितान्त सत्य है कि जिसे सारे संसार के उद्धार की गम्भीर चिन्ता है, जिसने सारे संसार को जगाने का बेडा उठाया है। वह किस प्रकार से अपनी जन्म भूमि भारत वर्ष को म्लेच्छों के हाथ में देख सकता था। वे शरीर से अत्यंत वृद्ध हो चुके थे। किन्तु ईश्वर को ऐसा अभिप्रेत न था। कृपालु ईश्वर ने स्वामी विरजानन्द जी के योजना वृक्ष को फलीभूत करने के लिए तथा उनके निराश हृदय में आशा जल सीचने के लिये एक दिव्य विभूति को उनकी पाठशाला में भेजा। उस दिव्य विभूति का नाम दयानन्द सरस्वती था। जिसे पाकर स्वामी विरजानन्द जी ने कहा था कि ''अंधेन याष्टिका लब्धा'' अर्थात अन्धे को लाठी मिल गई।

स्वामी दयानन्द सरस्वती युग प्रवतर्क शिष्य

स्वंत १९१७ वि. तदानुसार १८६० ई. में स्वामी दयानन्द विरजानन्द जी की मथुरा पाठशाला में पहुंचे। स्वामी विरजानन्द जी से दयानन्द जी ने अष्टाध्यायी महाभाष्य, निरूक्त आदि आर्ष ग्रन्थो का गम्भीर अध्ययन किया और अपनी पूर्व ज्ञान पिपासा को पूर्णत: शान्त किया। स्वामी विरजानन्द जी ने स्वामी दयानन्द को अपने तुल्य विद्यासागर बनाया, और आर्ष ग्रन्थों का प्रचार एवं वैदिक धर्म का प्रसार, भारत स्वातन्त्रय योजना आदि महत्वपूर्ण कार्यो का भार अपने कंधो से

उतार कर स्वामी दयानन्द जी को सौंप दिया। अपने जीवन के अन्तिम समय में विरजानन्द जी ने योग्य शिष्य को प्राप्त करके सुख और शान्ति का अनुभव किया। भारत के इतिहास में युग परिवर्तन के लिये अदभुत घटना थी।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की देन

उन्नीशवीं शताब्दि के मध्य तथा अन्तिम चरण में भरत का भविष्य नया मोड ले रहा था, सदियों से सुसुप्त पड़ी देश की चेतना अव्यक्त से व्यक्त और सुसुप्ति से जागृत, जडता से प्रगती की तरफ अग्रसर हो रही थी। उसी काल में १७७२ में बंगाल में राजाराम मोहनराय, १८३४ में रामकृष्ण परम हंस, १८२४ में महर्षि दयानन्द व विवेकानन्द जी १८९३ मे मद्रास में थियोसोफिकल सोसाइटी १८८४ महाराष्ट्र में प्राथर्ना सभा, इसी काल में मुसलमानों को जगाने सर सैय्यद अहमद ने जन्म लिया।

विशेष ध्यानाकृर्षन

महर्षि दयानन्द जी को छोडकर उक्त सभी विभूतियों ने समय व रूढ़ियों के साथ समझौता करके रुढ़ी संस्कृति को ही आगे बढ़ाया इन्होंने माना, वेदों में पशु बलि है, नारी को वेद न पढ़ना, शिक्षा से वंचित रखना, जाति, छुआ-छूत मूर्ति पूजा वेदों में लिखा है, क्योंकि वेदो के शब्दों के अर्थो का इतिहास परक अनर्थ किया गया था। किन्तु महर्षि दयानन्द जी ने सर्वप्रथम वेदो के रुढ़ी इतिहास परक अर्थो पर प्रहार किया और संसार के सामने निरूक्त भाष्य के अनुसार वेदों के ईश्वर परक अर्थ किये, वेदों में मूर्ति पूजा नहीं है, वेदों में जाति व्यवस्था नहीं है, वेदों में बलिप्रथा नहीं है, वेदों में अनेक सामाजिक कुरुतियों नहीं है। इन्होने वेदों के अर्थ सृष्टि क्रमानुसार रख कर एक नई वैचारिक क्रान्ति को जन्म दिया, एक नई लहर पैदा कर दी, सबको झकझोर कर रख दिया। सारे सारे महापुरुष समय के साथ चले किन्तु दयानन्द जी ने समय को अपनी तरफ चलाया, जमाने की गर्दन पकड़ कर अपनी ओर चलाया। सत्यार्थ प्रकाश लिखकर नई क्रान्ति को जन्म दिया। आर्य समाज खोलकर सारे संसार को नई वैचारिक धारा प्रदान की, इसीलिये उन्नीसवी शताब्दि भारत का भविष्य बदलने वाली हुई और स्वतन्त्रता का मूल पाठ महर्षि दयानन्द जी ने ही पढाया था।

प्राचीन ऋषियों के लेखन शैली का अनुकरण तथा भारतीय संस्कृति का पुनःउद्धार

- प्राचीन काल में गुरु शिष्यों का संवाद व ज्ञानाजर्न एवं शंका समाधान में प्रश्नोत्तर के रूप नें होता था, क्योंकि मनुष्य की प्रवर्ती है कि वह प्रत्येक जिज्ञासा के लिये प्रश्न करता है, तभी उसकी सन्तुष्टि होती है। यही पद्धति महर्षि दयानन्द जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश, व रिग्वेदादि भाष्य भूमिका व अन्य ग्रन्थो में अपनाई, जो अपने आप में एक प्रेरणा श्रोत्र है।
- सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द जी ने त्रेतवाद का सिद्धान्त दिया, जीव, ब्रह्म, प्रकृति को नित्य माना और उसको वेदानुसार सिद्ध किया।
- महर्षि ने वेदो के अर्थ इतिहास परक नही, ईश्वर परक किये, और जहां जिस मंत्र में जो संगति लगती है उसको शुद्ध रुप में लगाया।
- महर्षि जी ने सिद्ध किया कि शिक्षा का अधिकार सभी स्त्री पुरुषो का है, नारी और शुद्रो को भी पढ़ने का समान अधिकार है। समाज सुधार का यह बहुत बडा कदम था।
- महर्षि जी सिद्ध किया कि ईश्वर ने सृष्टि के सारे तत्व प्राणीयों के लिये बनाऐ हैं। ईश्वर कभी भेदभाव नहीं करते तो मानव जगत में भेदभाव क्यों होता है। उन्होंने, ऊंच नीच, छुआ छूता शास्त्रों में नहीं है, सिद्ध किया।
- महर्षि दयानन्द जी ने सिद्ध किया, वेदो में जाति व्यवस्था नहीं है, अपितु गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था है, उन्होंने कहा जाति उसको कहते है जो जन्म से मृत्यू तक बनी रहे जैसे मनुष्य, घोडा, गाय, व करोड़ो पशु पक्षी ये प्रभु कृत जातियां हैं।
- महर्षि जी ने, तमाम धार्मिक व सामाजिक अन्धविश्वासों को मिटाया। स्वराज्य का बांध कराया, और स्वातन्त्रता आन्दोलन की नीव रखी। महर्षि दयानन्द जी ने सारा सामाजिक ढांचा ही दल दिया

(लेख का अधिकांश क्लेवर आर्य समाज के बलिदान ग्रन्थ लेखक श्री ओमानन्द सरस्वती से लिया गया है।)

गढ़ निवास मोहकमपुर, देहरादून उत्तराखण्ड
मो.: ८४११५१२०१९ / ७५५७६४१८००

❒❒❒

पूष्ठ ८ से चालू....

करने से उसे बूढ़ा भी होना पड़ेगा और मृत्यु को भी प्राप्त होना पड़ेगा, इसलिए ईश्वर के यह चारों गुण नष्ट हो जाते है, इसलिए ईश्वर अवतार नही ले सकता। महर्षि का कहना है कि राम और कृष्ण, ईश्वर नहीं थे, वे महापुरुष थे। इसी प्रकार महर्षि जी ने मूर्ति पूजा के लिए भी कहा कि मूर्ति जड़ है, उसको किसी प्रकार का ज्ञान नहीं है। जड़ चीज कभी भी किसी का भला या बुरा नहीं कर सकती, इसलिए मूर्ति पूजा करना समय को बर्बाद करना है। सामान्य जन कह देता है कि मूर्ति पूजा मोक्ष प्राप्ति की सीढ़ी है पर महर्षि जी कहते है कि मूर्तिपूजा मोक्ष प्राप्ति की सीढ़ी नहीं बल्कि खाई है जिसके अन्ध विश्वास रुपी खाई में पड़कर नष्ट हो जाता है।

६- वेदानुकूल चलने में ही विश्व शान्ति सम्भवः- उपर लिखी बातों से यह सिद्ध हो जाता है कि विश्व में शान्ति, वेदानुकूल चलने से ही सम्भव है। महाभारत से एक हजार वर्ष पूर्व तक विश्व में केवल वैदिक धर्म ही था, इसलिए विश्व में सुख व शान्ति थी। महाभारत के समय से ही वेद - ज्ञान प्रायः लुप्त होता जा रहा है जिसके कारण विश्वमें दुःख व अशान्ति का बाहुल्य होता जा रहा है, इसलिए हमें महर्षि दयानन्द के बताए वेद - मार्ग को पुनः अपनाना होगा, तभी विश्व में सुख व शान्ति का होना सम्भव है।

१८० महात्मा गान्धी रोड, (दो तल्ला) कोलकत्ता-७.
फोन : २२१८३८२५ (०३३) ८२३२०२५५९०
मो. : ९८५०१३५७९४

जाति, आयु और भोग

पं. रघुनन्दन शर्मा

योगशास्त्र में लिखा है कि '**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः**, अर्थात् पूर्वकर्मानुसार प्राणियों को जाति, आयु और भोग मिलते है। प्रत्येक प्राणी किसी-न-किसी जाति का होता है। जाति की पहिचान बतलाते हुए न्यायशास्त्र में गौतममुनि कहते हैं कि '**समानप्रसवात्मिक जाति**', अर्थात् जिसका समान प्रसव हो वह जाति है। समान प्रसव वह कहलाता है कि जिसके संयोग से वंश चलता हो। गाय और बैल के संयोग से वंश चलता है, इसलिए वे दोनों एक जाति के हैं, परन्तु घोड़ी और कुत्ते से वंश नहीं चलता, इसलिए ये दोनों एक जाति के नहीं है। इस जाति की दूसरी पहचान आयु है। जिन-जिन प्राणियों का समान प्रसव है उनकी आयु भी समान ही होती है। जितने दिन प्राय: गाय जीती है उतने ही दिन प्राय: बैल भी जीता है, परन्तु जितने दिन घोड़ी जीती है उतने ही दिन कुत्ता नहीं जीता। जाति की तीसरी पहचान भोग है। जिनका समान प्रसव और समान आयु है उनके भोग भी समान ही होते हैं। गाय और बैल का समान प्रसव और समान आयु है, इसलिए दोनों के भोग भी- आहार-विहार भी- समान ही हैं, परन्तु घोड़ी और कुत्ते का जहाँ समान प्रसव और समान आयु नहीं है वहाँ भोग भी समान नहीं है। घोड़ी घास खाती है और कुत्ता घास नहीं खाता, किन्तु मांस खाता है। तात्पर्य यह कि प्रत्येक जाति का प्रसव, आयु और भोग एक-समान ही होता है और इन्हीं तीनों गुणों से प्रत्येक योनि पहचानी जाती है, इसलिए मनुष्यों को उचित है कि वे जिस प्राणी से काम लेना चाहें उसकी जाति के अनुसार उसके भोगों को देते हुए उसकी पूर्ण आयु तक जीने का अवसर दें।

जिस प्रकार किसी सजा पाये हुए कैदी के लिए तीन बातें नियत होती हैं, उसी प्रकार प्राणियों को जाति, आयु और भोग दिये गये हैं। कैदी के लिए लिखा होता है कि यह अमुक श्रेणी की जेल में जाए, अमुक अहार-विहार के साथ अमुक काम करे और अमुक समय तक वहाँ रहे। यहाँ कैदी की श्रेणी ही प्राणियों की जाति है, कैदी का काम और आहार-विहार ही प्राणियों के भोग हैं और कैद की अवधि ही प्राणियों की आयु है। जिस प्रकार कैदी को उसके भोग देकर ही उतने दिन तक अमुक जेल में रक्खा जा सकता है, उसी प्रकार इन समस्त प्राणियों को भी उनके भोग देकर ही उनसे उनकी आयुभर काम लिया जा सकता है। यदि जेलदारोगा कैदी के भोग और स्वास्थ्य, अर्थात् आयु में विघ्न डाले तो वह अपराधी समझा जाता है, क्योंकि राजा का यह अभिप्राय नहीं है कि कैदी को मार डाला जाए। इसी प्रकार वे मनुष्य जो प्राणियों को दु:ख देते हैं, परमात्मा के न्याय के विरुद्ध करते हैं, अतएव पापी हैं। जैसे अन्य प्राणियों के भोग और आयु में बाधा बहुँचाना पाप है वैसे ही मनुष्यों की समानता में भी बाधा पहुँचाना पाप है। जिस प्रकार एक समानप्रसव जाति समान आयु को प्राप्त करके समान भोगों को भोगती है उसी प्रकार हम मनुष्यों को भी समझना चाहिए कि समस्त मनुष्य भी समानप्रसव और समान आयुवाले हैं, इसलिए उनके भोग भी समान ही होने चाहिएँ।

जो नियम समानप्रसव, समान आयु और समान भोगवाले मनुष्यों और प्राणियों के अपराधों और दण्डों तथा जेलों और दण्डों का है, वही नियम ऋणी और धनी के लेन-देन का भी है। मनुष्य जब किसी का ऋणी होता है तब महाजन भी उसको अपने घर में रखकर और उससे काम कराकर ही अपना रुपया प्राप्त करता है और ऋणी को जिन-जिन पदार्थों की आवश्यकता होती है वे पदार्थ महाजन ही देता है, क्योंकि वह जानता है कि बिना रुपया दिये यदि वह भूख से मर जाएगा या अन्य दु:खों से घबराकर कहीं चला जाएगा तो मेरा रुपया डूब जाएगा। इसलिए यदि मनुष्यों को मनुष्यों, पशुओं और वृक्षों से लेना है तो उन्हें हर प्रकार से सुखी रखना चाहिए। सुखी रखने का नियम सृष्टि ने बतला दिया है कि प्रत्येक प्राणी की जाति, आयु और भोग नियत है, अत: तुम उसके भोगों को देते हुए और उसकी पूर्ण आयु तक रक्षा करते हुए अपना ऋण लेते चले जाओ और ऐसा प्रबन्ध करो कि कभी किसी प्राणी की अकालमृत्यु न हो। इस पर प्राय: लोग कहते हैं, कि यदि परमेश्वर को किसी की अकालमृत्यु स्वीकार न होती तो वह वर्षाऋतु में पानी बरसाकर, जंगलों में अग्नि जलाकर और आँधी-तूफान उत्पन्न करके क्यों करोड़ो प्राणियों को अकाल में ही मारता और क्यों व्याघ्रादि हिंस्त्र प्राणियों को उत्पन्न करके लाखों प्राणियों का अकाल में ही संहार करता?

इसका उत्तर बहुत ही सरल है। हम गत पृष्ठों में कर्मानुसार चेतनसृष्टि के उत्पत्ति क्रमों का वर्णन करते हुए दो प्रकार की सृष्ट्युत्पत्ति क्रमों का वर्णन कर आये हैं। पहला क्रम सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के अनुसार खड़ी, आड़ी और उलटी सृष्टि की उत्पत्ति का है और दूसरा आपत्कालक्रम है जो सृष्टि की अस्वाभाविकता को रोकने के लिए काम में लाया जाता है, अर्थात् जब मनुष्य अपनी हिंसावृत्ति से प्राणियों का संहार यहाँ तक बढ़ा देता है कि उनको अपने कर्मफलों के भोगने के लिए पूरी आयु तक जीना भी कठिन हो जाता है और जब मनुष्य समाज जंगलों को काटकर, पहाड़ो को तोड़कर, समुद्रों को हटाकर और भौगर्भिक पदार्थों को निकालकर सृष्टि में व्यतिक्रम उत्पन्न कर देता है, जिससे सृष्टि के नियमों में बाधा पड़ती है और प्राणियों को कष्ट होता है, तब परमात्मा उन अत्याचारी मनुष्यों को कीड़े-मकोड़े और कीट-पतंग बनाकर उन्हीं वर्षा, अग्नि और तूफान आदि प्राकृतिक घटनाओं के द्वारा प्रतिवर्ष मार देता है जिनको उन्होंने जंगल आदि काटकर बिगाड़ा था।

इसी प्रकार मांसाहारी मनुष्यों को पशु बनाकर और पीड़ित पशुओं को हिंस्त्र प्राणी बनाकर उन्हें अत्याचार का प्रतिफल दिला देता है। जिस प्रकार ये दोनों प्रबन्ध होते हैं उसी प्रकार जब प्राणियों का नाश इतना अधिक हो जाता है कि जीवों को जन्म धारण करने के लिए पूरे माता-पिताओं की भी कमी हो जाती है तब इन थोड़े-से ही माता-पिताओं में ही अधिक सन्तान उत्पन्न होने लगती है, परन्तु जब थोड़े-से माता-पिता भी सब जीवों को उत्पन्न नहीं कर सकते तब परमेश्वर उस अत्याचारी मनुष्यसमाज का नाश करने के लिए उन्हीं आनेवाले प्राणियों को ऐसा जहरीला बना देता है कि ये नाना प्रकार की बीमारी के जर्म्स बनकर मनुष्यों का नाश कर देते हैं और ऐसे वृक्षों को भी उत्पन्न कर देता है जो मनुष्यादि प्राणियों को पकड़-पकड़कर खा जाते हैं और पशुओं तथा जंगलों की रक्षा कर लेते हैं। यह सारा प्रबन्ध सृष्टि के नियमों की रक्षा करने के लिए किया जाता है। सृष्टि के ये नियम अनादि हैं, क्योंकि पूर्व सृष्टि के अत्याचारियों को प्रतिफल दिलाने के लिए परमात्मा आदिसृष्टि में भी मकड़ी और बतखों की भाँति कुछ ऐसी योनियाँ उत्पन्न कर देता है जो स्वभावत: ही प्राणियों का नाश करती हैं, इसलिए मनुष्य को यह उचित नहीं है कि वह परमेश्वर के अपराधियों को अपना अपराधी समझकर उन्हें सताये।

जिस प्रकार कोई अपराधी या ऋणी न्यायाधीश की आज्ञा से ही दण्ड पा सकता हैं, वादी की ओर से नहीं उसी प्रकार वर्षा, आग, आँधी और भूकम्प के द्वारा अथवा सिंह-व्याघ्र आदि हिंस्र पशुओं के द्वारा परमेश्वर ही प्राणियों का

अकाल में संहार कर सकता है, अन्य कोई नहीं, इसलिए ईश्वरीय न्यायव्यवस्था का तात्पर्य यह नहीं निकाला जा सकता कि जब परमेश्वर लाखों प्राणियों को अकाल में मार देता है तो मनुष्य भी उनको अकाल में मार डाले। प्रत्युत यह तात्पर्य तो अवश्य निकलता है कि मानुषी दुरवस्था के कारण परमेश्वरीय व्यवस्था को छोड़कर, जिन प्राणियों ने दूसरे प्राणियों को अकाल में मारकर खाने का अभ्यास कर लिया है, उस अभ्यास के छुड़ाने का प्रयत्न मनुष्य अवश्य करे।

हम चेतनसृष्टि की उत्पत्ति में लिख आये हैं कि परमात्मा ने पूर्वसृष्टि के बचे हुए दुष्टों के दुष्कर्मों का फल देने के लिए मकड़ी और बतख आदि थोड़ी-सी ऐसी भी योनियाँ उत्पन्न की हैं जो स्वभावत: जीवित प्राणियों को मारकर खाती हैं और शेष सिंहादि मांसाहारी प्राणी मुर्दों का मांस खाकर केवल संसार की सफाई करने के ही लिए मनाये गये हैं, जीवित प्राणियों को मारकर मांस खाने के लिए नहीं। साथ ही हम यह भी लिख आये हैं कि उनमें जीवित प्राणियों को पकड़कर खानेवाले तभी उत्पन्न होते हैं जब मनुष्यों में प्राणिसंहार की प्रवृत्ति अत्याधिक बढ़ जाती है, इसलिए मनुष्यों को उचित है कि वे प्राणियों का मारना और उनका मांस खाना छोड़ दें, जिससे हिंस्र जन्तुओं से हिंसा करने का स्वभाव जाता रहे, क्योंकि जब मनुष्य अन्य प्राणियों का वध करके उनका मांस खाता है तब उन पशुओं के भोजन में कमी उत्पन्न होती है, जिनका भोजन संसार की सफाई के उद्देश्य से मृत प्राणियों का मांस बनाया गया है। भोजन में कमी होने से ही वे चोर और डाकुओं की भाँति दूसरे जीवित प्राणियों को चोरी से मारकर खाते हैं। ऐसी दशा में यही कहना पड़ता है कि जीवित पशुओं को पकड़कर खाने की आदत उनकी स्वाभाविक नहीं है, प्रत्युत मनुष्यों के कारण से हुई है। यहाँ हम हिंस्र पशुओं के स्वभाव से सम्बन्ध रखनेवाली दो- एक घटनाओं का वर्णन करके दिखलाते हैं कि जीवित जानवरों को पकड़कर खाने की आदत उनकी स्वाभाविक नहीं है।

कोई २५ वर्ष पुरानी बात है कि मध्यप्रदेश की रायगढ़ रियासत में एक छोटा-सा शेर का बच्चा पकड़कर लाया गया। राजा साहब ने उसे पाल लिया और उसके खाने के लिए मांस का प्रबन्ध करा दिया। तदनुसार उसको नित्य मांस के टुकड़े बाहर से दिये जाने लगे। यह क्रम साल भर से भी ज्यादा जारी रहा। जब वह काफी बड़ा हो गया तो एक दिन उसके कठहरे में जिन्दा बकरा डाल दिया गया। बकरे को देखते ही शेर षक कोने में जाकर बैठ गया और बकरा इधर उधर घूमने लगा। यह खबर राजा साहब को दी गई। राजा साहब ने उस दिन से जिन्दा बकरा देना बन्द कर दिया, परन्तु विनोद के लिए जब इच्छा होती थी तब जिन्दा बकरा कठहरे में डलवाकर तमाशा देखा करते थे। जैसी यह घटना है वैसी ही एक घटना का वर्णन नवम्बर सन् १९१३ के प्रसिद्ध वैज्ञानिक अख़बार 'लिटिल पेपर' में इस प्रकार छपा था कि 'पशुओं में बच्चों के पालन का अभ्दुत प्रेम देखा जाता है। बिल्लियाँ चूहों, शशकों और अन्य प्राणियों के बच्चों का पालन करती हैं। गौवें बकरी के बच्चों को पालती हैं। कुतियाँ लोमड़ी, खरगोश और भेड़ों के बच्चों को पालती हैं और शूकरियाँ भी बिल्ली के बच्चों को पालती हैं। सबसे बड़ा प्रसिद्ध उदाहरण डबलिन (जर्मनी) के चिड़ियाधर की वृद्धा सिंहनी का है, जिसने अपने माँद में एक कुत्ता पाल रक्ख था जो उसके माँद के चूहे मारा करता था''। इसी प्रकार की एक बात महाभारत
में भी लिखी है-

सा हि मांसार्गलं भीष्म मुखात्सिंहस्य खादत:।
दन्तान्तरविलग्नं यत्तदादत्तेऽल्पचेतना।। - महा. सभापर्व (४४।३०)

अर्थात् भूलिंग पक्षी सिंह के मुँह में अपना मुँह डालकर उसके दाँतों में घुसे हुए मांस को निकाल कर खाता है।

भूलिङ्ग पक्षी बहुत बड़ा होता है। उसमें इतना मांस होता है कि सिंह उसको खाकर अपना पेट भर सकता है, परन्तु अपने मुँह के अन्दर आ जाने पर भी वह उसको नहीं मारता। इन प्रमाणों से पाया जाता है कि जीवित प्राणियों का मारना व्याघ्रादि का स्वभाव नहीं है। संसार का सबसे बड़ा प्राणिशास्त्री आल्फ्रेड रसल वालिस ठीक ही कहता है कि 'मांसाहारी जन्तु केवल भूख लगने पर ही दूसरे प्राणियों को मारते हैं, मनोविनोद के लिए नहीं। पालतू बिल्लियों और चूहों के जो उदाहरण दिये जाते हैं, वे भ्रममूलक हैं''। ठीक है, हिंस्रपशु यदि मनोविनोद के लिए प्राणियों की हिंसा करते तो सरकसवाले लोग सिंह-बाघों के साथ कैसे कुश्ती लड़ते? इससे ज्ञात होता है कि हिंस्रपशु भूख के कारण ही प्राणियों की हिंसा करते हैं, परन्तु यदि समस्त संसार के मनुष्य मांस खाना छोड़ दें और प्रतिदिन के मरनेवाले पशुओं का मांस जंगलों और गाँवों की सरहदों में डलवा दिया जाए तो समस्त मांसाहारी प्राणी अपनी क्षुधा निवृत्त कर लें और अन्य प्राणियों को अकाल में मारना बन्द कर दें। कहने का तात्पर्य यह कि जब हिंस्रपशुओं का हिंसा करना स्वभाव ही नहीं है, जब वे मांस मिलने पर किसी की हिंसा करते ही नहीं और जब पर्याप्त मांस मिलने पर वे प्राणियों का मारना छोड़ सकते हैं तब यह नहीं कहा जा सकता कि प्राणियों का मारना उनका स्वभाव है। वे प्राणियों को तभी मारते हैं जब मनुष्य अन्या प्राणियों को मारखर जाता है। यदि मनुष्य अन्य प्राणियों को मारकर खाना छोड़ दे तो हिंस्रपशु भी जीवित जानवरो का मारना छोड़ दें, परन्तु जब मनुष्य प्राणियों को मारकर खाना नहीं छोड़ता तब परमेश्वर भी हिंसक पशुओं के द्वारा होनेवाली हिंसा की चिकित्सा नहीं कर सकता। यही कारण है कि संसार में हिंसा का साम्राज्य हो गया है और यह निर्णय करना कठिन हो गया है कि कितनी हिंसा ईश्वरी न्यायव्यवस्था से हो रही है और कितनी मनुष्यों के अत्याचार से।

मनुष्यकृत और ईश्वरकृत हिंसा में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि जो मनुष्यकृत है, वही ईश्वरकृत है। मनुष्य कर्म करता है और परमेश्वर उसी कर्म के अनुसार फल दे देता है, अर्थात् आगे-आगे मनुष्यों के कर्म और पीछे-पीछे परमेश्वर की व्यवस्था काम कर रही है, इसलिए मनुष्यकृत और ईश्वरकृत हिंसा में कुछ भी अन्तर नहीं है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि परमेश्वर हिंस्रपशुओं के द्वारा मनुष्यों और मनुष्यों के प्रिय पशुओं को अल्पायु में मरवाकर मनुष्यों को उनकी हिंसाप्रवृत्ति का प्रतिफल देता है तो यह हिंसा मनुष्यों की ही की हुई समझी जा सकती है, ईश्वर की कराई हुई नहीं, इसलिए मनुष्यों को उचित है कि वे किसी भी प्राणी की हिंसा न करें और प्रत्येक प्राणी को ऐसा अवसर दें कि वह अपने भोगों को भोगता हुआ अपनी पूर्ण आयु तक जिये और अपने श्रम से ऋण चुकाकर चला जाए। इस प्रकार का सृष्टि - सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने से- सृष्टि के कारण-कार्य की मीमांसा को हृदयङ्गम करने से- मनुष्य सृष्टि का उचित उपयोग कर सकता है और संसार के उचित उपयोग से मोक्ष प्राप्त कर सकता है, परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य केवल उपर्युक्त सिद्धान्तों के जान लेनेमात्र से ही सृष्टि का उचित उपयोग नहीं कर सकता और न वह केवल सृष्टि के कारण-कार्य की श्रृङ्खला को समझकर ही न्याययुक्त व्यवहार कर सकता है, क्योंकि जानना और बात है और करना दूसरी बात है। इसलिए मनुष्य को उचित है कि वह मोक्षसाधन के साथ-ही-साथ सृष्टि का उपयोग करे। इसका कारण यही है कि सृष्टि का उचित उपयोग मोक्षसाधना के साथ ही हो सकता है, अतएव आवश्यक जान पड़ता है कि हम यहाँ थोड़ा-सा मोक्ष के आभ्यन्तरिक विषयों का भी सारांश लिख दें।

समान नागरिक कानून

– संदीप आर्य
मंत्री-वैदिक मिशन मुम्बई

कहते हैं हम सभी मानव एक ईश्वर की संतान हैं, एक खुदा की औलाद हैं। हम सभी भारतीय प्रतिज्ञा भी लेते है कि हम सब भारत वासी भाई बहन हैं। इस दृष्टि से हम सब लोग एक समान ही हुए। हमारे देश के कानून में भी सभी नागरिकों को जीने का व बोलने का एक समान अवसर दिया गया है... तो फिर धर्म के आधार पर हमारे देश में क्यों अलग अलग कानून बने हैं अथवा बनाए गए हैं ?

अंग्रेजों ने भारत में अपने शासन काल में समान नागरिक संहिता बनाने की कोशिश की थी किन्तु कट्टरपंथी मुस्लिम वर्ग द्वारा इसका विरोध होता देख अंग्रेजों ने यह विचार त्याग दिया। आज़ादी के बाद भी इसी प्रकार फिर से समान कानून बनाने का प्रस्ताव आया किन्तु फिर मुस्लिम पर्सनल बोर्ड द्वारा विरोध होता देख तथा अपनी वोट की राजनीति को ख्याल में रखते हुए तत्कालीन सरकार ने इस प्रस्ताव को फिर ठंडे बिस्तर में डाल दिया। उस वक्त हमारे देश के न्याय वेत्ता डा. भीमराव अंबेडकर जी ने भी समान नागरिक क़ानून बनाने की कोशिश की किन्तु ऐसा हो न सका।

अब की बार भाजपा ने लोकसभा चुनाव के घोषणा पत्र में समान नागरिक कानून की स्थापना की घोषणा की तथा भारतीय संहिता के भाग ४ के अनुच्छेद ४४ को लागू करवाने का वादा किया। जिसका मतलब -पूरे देश में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करने का प्रयास राज्य करेगा।

इस समान नागरिक संहिता के तहत यह कहा गया मुसलमानों को भी ट्रिपल तलाक व् बहु विवाह आदि का स्वच्छन्द हक न दिया जाये जिस प्रकार हिन्दुओ को नहीं दिया गया है। जब हमने अपने देश को धर्म - निरपेक्ष राज्य घोषित किया है तब ये धर्म सापेक्ष वाली विचारधारा क्यों ? ऐसा कहा गया है कि राजनीति में धर्म का अंकुश नहीं होना चाहिए, फिर धर्म के आधार पर भेद भाव क्यों ?

जब भारतीय दण्ड संहिता सबके लिए समान रखी गयी है, तब नागरिक संहिता अलग अलग क्यों ?

चोरी के मामले में सभी नागरिकों को समान दण्ड व् न्याय देने की प्रथा है तब निकाह व् तलाक में समान प्रथा क्यों नहीं ?

यह अज़ीब सा विरोधाभास लगता है। यह बात न तो किसी बुद्धिजीवी के गले उतरती है, न ही हिन्दू समाज के लोगो को भाती है।

भारत में मुस्लिमो के निजी कानून 'मुस्लिम पर्सनल बोर्ड' द्वारा ही निर्धारित किये गए हैं देश के लॉ बोर्ड द्वारा नहीं। हिन्दुओ के नागरिक संहिता में कई बार फेर फार हो चुका है किंतु १९३७ से अब तक इनके कानून में कोई बदलाव नहीं हुआ है, जबकि समय की मांग उसमें रिफार्म चाहती है।

समान नागरिक कानून के अनेक लाभ हैं। इससे हिन्दुओ के साथ साथ मुस्लिम वर्ग को भी फायदा है और देश की खुशहाली व् प्रगति में भी सहायक है-

१) आज जब हम नारी स्वतंत्रता की बात करते है, उसको समान दर्जा देने की बात करते है, नारी को मर्दोके कंधे के साथ कंधा मिला कर चलने की आज़ादी देते हैं, तब एक तरफा ट्रिपल तलाक की तलवार उसकी आज़ादी पर वार नहीं करती। अतः उक्त कानून के पास होने से नारी की मौलिक आज़ादी उसको प्राप्त हो सकेगी जिसका उसको बाक़ायदा हक्क भी है। विचारणीय बात यह है कि मुस्लिम महिलाओं के द्वारा इस तरह के बदलाव की पुरजोर मांग उठ रही है। हाल ही में मुंबई की हाज़ी अली दरगाह में औरतों के जाने की छूट इसी बात का शुभ संकेत देता है।

२) समान कानून के तहत ही बहु विवाह पर पाबन्दी लगेगी और इससे प्रति पुरुष के बच्चों की पैदावार में स्वतः कमी आ जायेगी। जिससे उनकी परिवार की माली हालात बेहतर होगी, खुशहाली भी बढ़ेगी और देश में जनसंख्या का असंतुलन का धर्म संकट भी खत्म हो जायेगा।

३) मुसलमानों को हिन्दुओ की अपेक्षा जो विशेष छूट अथवा अधिकार मिल रहे थे उससे हिन्दुओ के मन में एक प्रकार की हीन भावना फ़ैल रही थी, उससे वे मुक्ति पा लेंगे और उनके दिलों से द्वेष की भावना समाप्त होगी, जिससे समाज में प्रेम, सद्भाव व् शांति स्थापित हो सकेगी।

४) इस प्रथा के बन्द होने से 'हलाला' जैसी घिनौनी कुप्रथा भी अपने आप बन्द हो जायेगी जिससे उनकी औरतें शारीरिक उत्पीड़न व् मानसिक ग्लानि से बच जाएँगी, जो कि उनकी ज़िंदगी का सबसे बड़ा अभिशाप है।

५) कुछ व्यक्ति तो केवल कई विवाह करने के लालच से ही मुस्लिम बनते हैं। सबके लिए एक कानून बना तो इस प्रकार का असामाजिक धर्म परिवर्तन अपने आप रुक जाएगा और सामाजिक व्यवस्था भी नहीं डगमगायेगी।

सारी दुनिया के करीब २२ मुल्कों ने जिसमें कनाडा, अमेरिका, यू के, जर्मन, ऑस्ट्रेलिया आदि अनेक विकसित देश आते हैं , इस ट्रिपल तलाक को कब का बैन किया हुआ है, तो फिर भारत में इस पर बन्दिश लगाने में क्या हर्ज है। चलो मान लिया की शरीयत लिखते वक्त ऐसी आवश्यकता पड़ी हो जिसके कारण शरीयत में ट्रिपल तलाक, बहु विवाह आदि रस्में लिखनी पडी हों, किन्तु आज हालात एकदम अलग है, पूरी तरह बदल गए है, इंसान ने बहुत ज्यादा बौद्धिक तरक्की कर ली है, तो क्यों न वक्त के साथ बाकायदा इसे बदल कर हम सारी दुनिया को प्रगतिशील होने का परिचय दें।

देखा गया है कि इस समान नागरिक कानून का सभी मुसलमान विरोध नहीं करते। इस समाज का कुछ तबका ही इसका विरोध करता है। मुस्लिम पर्सनल बोर्ड जो इसका कट्टर विरोधी है, उसका न ही कोई खास वजूद है, न ही इस बोर्ड को भारत सरकार से कोई ख़ास संवैधानिक मान्यता ही प्राप्त है। वह तो एक प्रकार का एनजीओ मात्र ही है और तो और वह समूचे मुस्लिम समाज का प्रतिनिधित्व भी नहीं करता।

जब भी समान नागरिक आचार संहिता लागू करने की बात आती है, मुस्लिम कट्टरपंथी शरिया कानून की बात करने लगते हैं। उन्हें लगता है समान नागरिक संहिता लागू होने से देश में मुस्लिम संस्कृति ध्वस्त हो जायेगी, इसके लिए वे कई बार संविधान के भाग ३ में उल्लखित अनुच्छेद २५ का सहारा लेते हैं। अनुच्छेद २५ किसी भी नागरिक को धार्मिक स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार देता है। इस समय वे यह भूल जाते हैं कि हर नागरिक के कुछ दूसरे मौलिक अधिकार भी हैं जैसे अनुच्छेद १४ स्त्री-पुरूष को बराबरी का अधिकार देता है। मुस्लिम पुरूष एक बार में ४ शादियां कर सकता है, परन्तु स्त्री नहीं, तो यह स्त्री के बराबरी के मौलिक अधिकार का हनन नहीं है?? पुरूष ४ शादियां करता है और सभी पत्नियों के साथ एक जैसा व्यवहार नहीं करता है, उन्हें मानसिक कष्ट में रखता है तो यह उनके जीने के अधिकार अनुच्छेद २१ का हनन नहीं है??

यदि कोई कहे कि हम सिर्फ शरीयत के कानून को मानेंगे और दूसरा नहीं तो शरीयत के सभीकानून को मानना पड़ेगा। मसलन यदि कोई चोरी इत्यादि दुष्कर्म करे तो उसे सारे आम कोड़े मारने तथा उसके हाथ पैर काटने का हुक्म है। फिर यह सही नहीं होगा कि कुछ क़ानून शरीयत का माना जाय और कुछ क़ानून भारतीय दण्ड संहिता का। अच्छा अच्छा हाँ हाँ और खराब खराब थू थू नहीं चलेगा।

समझा जाता है कि भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार के इस कदम से राजनीतिक विवाद शुरू होगा क्योंकि देश में समान नागरिक संहिता लागू करने को लेकर राजनीतिक पार्टियां एकमत नहीं हैं। समान नागरिक संहिता पर राजनीतिक दलों के अपने-अपने तर्क हैं तथा अपने अपने कुतर्क भी। कुछ राजनीति दल इसको स्वार्थ वश पास करवाना नहीं चाहते, कुछ अपनी वोट की खतिर कोई यह खतरा मोल लेना नहीं चाहते।

सुप्रीम कोर्ट की बेंच के जज विक्रमजीत सेन तथा शिवा कीर्ति सिंह ने भी सरकार को UCC को क्रियान्वित न करने का कारण पूछा है।

The Economic Times की रिपोर्ट के अनुसार यह पहला मौका है जब किसी सरकार ने लॉ कमीशन को 'समान नागरिक संहिता' को अमली जामा पहनाने के लिए संकेत दिए हैं।

धर्म मानवता को सरल व सही बनाने के लिए होते हैं, न कि दुष्कर बनाने हेतु। धर्म की शिक्षाएं भी यदि समाज के लिए माकूल न हो तो समय व् परिस्थितियों के हिसाब से उसमे परिवर्तन होने चाहिए और लाज़मी भी हैं।

भारत में मुस्लिमो के निजी कानून 'मुस्लिम पर्सनल बोर्ड' द्वारा ही निर्धारित किये गए हैं देश के लॉ बोर्ड द्वारा नहीं। हिन्दुओ के नागरिक संहिता में कई बार फेर फार हो चुका है किंतु १९३७ से अब तक इनके कानून में कोई बदलाव नहीं हुआ है, जबकि समय की मांग उसमें रिफार्म चाहती है। हिन्दुओ के नागरिक क़ानून में भी यदा कदा फेरबदल होते रहे हैं और उनको हिन्दू कौम ने ना नुकुर करके, थोड़ा बहुत विरोध करके आखिरकार स्वीकार कर लिया और वह तब्दीली हिन्दू समाज के लिए काफी फायदेमंद रही । जैसे बाल विवाह और सती प्रथा पर रोक, विधवा विवाह की छूट आदि कानून ।

आशा है प्रगतिशील, बुद्धिजीवी, समाज- सुधारक व्यक्ति सामने आएंगे और इस कानून को कट्टरपंथियों के कब्जे से छुड़ा कर, फेरबदल करके समाज में यथा शीघ्र लाने में कामयाब होंगे और भारत के विकास में सच्चे सहयोगी होंगे ।

संदीप आर्य
मंत्री-वैदिक मिशन मुम्बई

सूर्य चिकित्सा

पं. श्रीराम शर्मा

अपचित: प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव।
सूर्य: कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु।।

(अपचित:) हे हानिकारक व्याधियो ! (प्रपतत) दूर जाओ (इव) जैसे (सुपर्ण:) तेज उड़ने वाला पक्षी (बसते:) अपने घोसले से निकल जाता है। (सूर्य:) सूर्य (भेषजम्) चिकित्सा (कुणोतु) करे (वा) तथा (चंद्रमा) चंद्रमा (उप-उच्छतु) समीप होकर प्रकाश करें।

सूर्य की प्रचंड शक्ति समस्त रोगों की चिकित्सा करती है। शरीर की जीवनीशक्ति सूर्य द्वारा ही संचित होती है। रक्त के रोग-विनाशक श्वेत कीटाणुओं को बल, सूर्य की किरणों द्वारा ही मिलता है। जब हम सूर्य भगवान का तेज अपने अंदर धारण करते हैं, तो समस्त हानिकारक व्याधियां उसी प्रकार दूर भाग जाती है, जैसे पक्षी अपने घोसले छोड़कर सूर्योदय होने पर दूसरी जगह चले जाते हैं। चन्द्रमा के प्रकाश में शीतल और स्निग्धता के गुण हैं।

उत् पुस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वाश्च प्रमुणन् क्रिमीन्।।

(पुरस्तात्) पूर्व दिशा में (सूर्य:) सूर्य (उत एति) उदय होता है, (विश्वदृष्ट:) उस उसको देखते है, (अदृष्ट हा) जो सूक्ष्म रोग-जंतु हमें दिखाई नहीं देते, उन्हे नष्ट करता है (दृष्टान्)दिखाई देने वालों को (घ्रन्न) मारता हुआ (च) और (अदृष्टान्) न दिखाई देने वाले (सर्वान्) जितने प्रकार के भी हैं, उन सब (क्रमीन्) रोग-कीटाणुओं को (प्रमृणन्) नष्ट करता हुआ, सूर्य उदय होता है।

नाना प्रकार के रोग-कीटाणुओं से हमारी रक्षा करने वाला सूर्य है। वह अदृश्य रोग-जंतुओं का निरंतर संहार करता रहता है। दिखाई देने वाले ज्वर, क्षय, खांसी, संग्रहणी आदि प्रबल रोग सूर्य द्वारा अच्छे होते है और जो रोग प्रकट नहीं हुए हैं, वरन गर्भ में ही हैं, उन्हें भी सूर्य का तेज नष्ट कर देता है। जब सूर्य उदय होता है, तो समस्त रोग-बाधाओं का नाश करता है।

या रोहिणीदैवत्या गावे या उत रोहिणी:।
रूपंरूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परि दध्यसि।। - अथर्ववेद १/२२/३

जो देवता संबंधी लाल सूर्य-किरणें हैं, वे लाल गायें है। उनको रूप और बल के अनुरोध उनके साथ तुझको चारों ओर धारण करते हैं। पुष्ट करते हैं।

सूर्य की लाल किरणों की उपमा वेद में लाल गायों से दी गई है। जैसे गाये उत्तम दूध देकर हमारे शरीरों को परिपुष्ट करती हैं, बल-वीर्य को बढ़ाती है, अशक्तता और निर्बलता को दूर करती है, उसी प्रकार लाल किरणों में भी अनेक गुण हैं। वे रोगों के पंजे से छुड़ाकर शरीर को पुष्ट करती हैं, बलवान बनाती है।

परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्त्वाय दध्मसि।
यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत्।।

दीर्घ आयु की प्राप्ति के लिए तुझको लाल रंगो से चारों ओर धारण करता हूं। जिससे यह (शरीर) नीरोग हो जाए और फीकेपन से रहित हो जाए।

जिन्हें दीर्घायु प्राप्त करने की इच्छा हो, जो अधिक काल तक जीवित रहने की इच्छा रखता हो, उसे सूर्य की लाल किरणों का सेवन करना चाहिए। फीकापन, निस्तेजता, कफ का प्रकोप, आलस्य, मलिनता को इन लाल किरणों की सहायता से बड़ी सुगमतापूर्वक दूर किया जा सकता है।

अनुसूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ।।

तेरा पीलापन, पांडु रोग तथा हृदय की जलन, हृदय रोग, सूर्य की अनुकूलता से उड़ जाए। गौ के तथा प्रकाश के उस लाल रंग से तुझको सब ओर धारण करता हूं। सूर्य की लाल किरणों में पीलिया, पांडु, हृदय की जलन, हृदय रोग आदि अनेक रोगों को दूर करने की बड़ी प्रचंड शक्ति भरी हुई है। जो उनको गो-दुग्ध की तरह सेवन करते रहते हैं, वे नीरोग रहते हैं। उपर्युक्त सूत्रों में सूर्य की लाल किरणों का वर्णन किया गया है। पीली, नीली आदि सप्तरंग की किरणों में सब गुण हैं। सूर्य के सप्त-मुखी घोड़े यह ७ रंगों की किरण ही हैं। इनके गुणों को जानने वाला व्यक्ति अमृतपाणि होकर यशस्वी चिकित्सक बन सकता है।

सनातन धर्म रक्षक आर्य समाज

प्रकाश आर्य

आर्य शब्द हमारी संस्कृति सम्मानजनक शब्द है। हमारे वेदों में सनातन धर्म ग्रंथों में रामायण, गीता, महाभारत, नीतियों में श्रेष्ठ पुरुषों को आर्य कहकर ही सम्बोधित किया जाता था, भगवान राम, भगवान श्रीकृष्ण, धर्मराज युधिष्ठिर, अर्जुन को भी आर्य नाम से संबोधित किया गया है।

हिन्दू शब्द मुगलकालीन समय से मुगलों द्वारा दिया गया है, आर्य का अर्थ होता है श्रेष्ठ। आर्य समाज की ठीक से पहचान न होने के कारण समाज इसके महत्त्व को समझ ही नहीं पाया। जबकि सत्य सनातन धर्म को पूरी तरह मानते हुए और उसका प्रचार करना इसका मुख्य उद्देश्य है।

भारतवर्ष के अतिरिक्त ३० से अधिक देशों में इसकी शाखाएं फैली हुई है, जिसके अन्तर्गत आर्य समाज मन्दिर, वृद्धाश्रम, गुरुकुल, अनाथालय, अस्पताल, विद्यालय, महाविद्यालय, विश्व विद्यालय, गौ शालाएं, व्यायामशालाएं, योगासन केन्द्र आदि हजारों की संख्या में संचालित होते हैं।

सनातन धर्म का उद्गम वेदों से हुआ है। ये वेद परमात्मा की वाणी हैं। संसार का सबसे पहला ज्ञान, सबसे पहली संस्कृति, यही ईश्वरीय ज्ञान है। यह सबके लिए, सदा के लिए तथा मानव जीवन की सभी पवित्र इच्छाओं को पूर्ण करने का ज्ञान इसमें समाहित है। सुख, शान्ति, मोक्ष सम्पन्नता, स्वास्थ ज्ञान, विज्ञान, व्यापार, परिवार, समाज, राष्ट्र और अनेक विद्याओं का भण्डार यह वेद है। पूर्ण ज्ञान का भण्डार इसलिए है क्योंकि यह उस पूर्ण परमात्मा का ज्ञान है। यह सदा से है और सदा रहेगा, इसलिए **इसे सनातन कहते हैं।** बस, आर्य समाज इसी पवित्र सनातन धर्म को मानता है और उसका प्रचार-प्रसार करने के लिए बनी एक संस्था है। आर्य समाज महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित किया गया है किन्तु उनकी अपनी कोई विचारधारा के आधार पर या किसी अन्य विचारधारा के आधार पर स्थापित नहीं है, यह पूर्ण सनातन वैदिक धर्म पर आधारित है।

आर्य समाज भगवान श्री रामचन्द्र और भगवान श्री श्रीकृष्ण जी के आदर्शों को पूर्ण स्थान देता है। क्योंकि जिस ज्ञान का सन्देश इन दोनों महापुरूषों ने दिया वह सब वेदों के अनुसार ही है। इनका अपना जीवन पूर्ण रूप से सत्य सनातन वैदिक धर्म के अनुसार ही था।

आर्य समाज आध्यात्म, समाज और राष्ट्रीय विचारधारा के कार्यों को करने वाला विश्व का एकमात्र संगठन है जिसमें इन तीनों विषयों पर कार्य किया जाता है।

आर्य समाज की कुछ उपलब्धियाँ और मान्यताएं इस प्रकार हैं–

१. **वेदों से परिचय** - वेदों के संबंध में यह कहा जाता था कि वेद तो लुप्त हो गए, पाताल में चले गए। किन्तु महर्षि दयानन्द के प्रयास से पुन: वेदों का परिचय समाज को हुआ और आर्य समाज ने उसे देश में ही नहीं अपितु विदेशों में भी पहुँचाने का कार्य किया।

२. **सबको पढ़ने का अधिकार**- वेद के संबंध में यह प्रतिबन्ध था कि वेद स्त्री और शूद्र को पढ़ने या सुनने का अधिकार भी नहीं था। किन्तु आज आर्य समाज के प्रयास से हजारों महिलाओं ने, एवं जिन्हें शूद्र मानकर उपेक्षित किया जाता था उन्हें भी यह अधिकार आर्य समाज ने दिलवाया। वेद पढ़कर ज्ञान प्राप्त किया और वे वेद की विद्वान है।

३. **जातिवाद का अन्त**- आर्य समाज जन्म से जाति को नहीं मानता। समस्त मानव एक ही जाति के हैं। गुण, कर्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था को आर्य समाज मानता है।

४. **स्त्री शिक्षा** -स्त्री को शिक्षा का अधिकार नहीं है, ऐसी मान्यता प्रचलित थी। महर्षि दयानन्द ने इसका खण्डन किया और सबसे पहला कन्या विद्यालय आर्य समाज की ओर से प्रारंभ किया।

५. **विधवा विवाह** - महर्षि दयानन्द के पूर्व विधवा समाज के लिए एक अपशगुन समझी जाती थी। आर्य समाज ने इस कुरीति का विरोध किया तथा विधवा विवाह को मान्यता दिलवाने का प्रयास किया।

६. **छुआछूत का विरोध** -आर्य समाज ने सबसे पहले जातिगत ऊँच-नींच के भेदभाव को तोड़ने की पहल की। अछूतोद्वार के संबंध में आर्य संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द ने अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन में सबसे पहले यह प्रस्ताव रखा।

७. **राष्ट्र चिन्तन** - परतन्त्र भारत को आजाद कराने में महर्षि दयानन्द को प्रथम पुरोधा कहा गया। सन् १८५७ के समय से ही महर्षि ने अंग्रेज शासन के विरूद्ध जनजागरण प्रारंभ कर दिया था। स्वतन्त्रता आन्दोलनकारियों के अनुसार स्वतन्त्रता के लिए ८० प्रतिशत व्यक्ति आर्य समाज के माध्यम से आए थे।

८. **गुरुकुल** - सनातन धर्म की शिक्षा व संस्कृति के ज्ञान केन्द्र

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-८ अंक-९ मुम्बई सितम्बर- २०१७ पृष्ठ-१६ मूल्य- रु. ९/-

आश्विन - २०७३ (२०१७) Post Date : 25-09-2017 MCN/136/2016-2018 MAHRIL 06007/31/12/18-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८०० / २६६०२०७५

प्रति

गुरुकुल थे, प्राय: गुरुकुल परम्परा लुप्त हो चुकी थी। आर्य समाज ने पुन: उन्हें शुरू किया।

९. **गौरक्षा अभियान** -ब्रिटिश शासन के समय से ही महर्षि ने गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित करने व गौवध पर पाबन्दी लगाने का प्रयास प्रारंभ कर दिया था। गौ करूणा निधि नामक पुस्तक लिखकर गौवंश के महत्व को बताया।

१०. **हिन्दी को प्रोत्साह** - स्वामी दयानन्द सरस्वती ने राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने के लिए एक भाषा को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा दिलाने के लिए सर्वप्रथम प्रयास किया।

११. **यज्ञ** - सनातन धर्म में यज्ञ का बहुत महत्व है। जितने भी शुभ कर्म होते हैं उनमें यज्ञ अवश्य किया जाता है। किन्तु यज्ञ का स्वरूप बिगाड़ दिया गया था। ऐसी स्थिति में यज्ञ के सनातन स्वरूप का पुन: आर्य समाज ने स्थापित किया, जन-जन तक उसका प्रचार किया और लाखों व्यक्ति नित्य हवन करने लगे।

१२. **शुद्धि संस्कार व सनातन धर्म रक्षा** - सनातन धर्म से दूर हो गए अनेक हिन्दुओं को पुन: शुद्धि कर सनातन धर्म में प्रवेश देने का कार्य आर्य समाज ने ही प्रारंभ किया।

सन् १९८३ में दक्षिण भारत मिनाक्षीपुरम् में पूरे गॉव को मुस्लिम बना दिया था शिव मन्दिर को मस्जिद बना दिया था। सम्पूर्ण भारत से आर्य समाज द्वारा आन्दोलन किया गया और वहां जाकर हजारों आर्य समाजियों ने शुद्धि हेतु प्रयास किया और पुन: सनातन धर्म में सभी को दीक्षित किया। मन्दिर की पुन: स्थापना की।

काश्मीर में जब हिन्दुओं के मन्दिर तोड़ना प्रारंभ हुआ तो उनकी ओर से आर्य समाज ने प्रयास किया और शासन से करोड़ों का मुआवजा दिलवाया।

ऐसे अनेक कार्य हैं, जिनमें आर्य समाज सनातन धर्म की रक्षा के लिए आगे आया और संघर्ष किया बलिदान भी दिया।

१३. **धर्म व ईश्वर** - सबका धर्म व ईश्वर एक है, बिना धर्म के मानव, मानव नहीं तथा बिना ईश्वर के सानिध्य के जीवन सफल नहीं है। बिना ईश्वर के कुछ भी संभव नहीं है।

१४. **पंच महायज्ञ** - प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन **ब्रह्मयज्ञ** (संध्या, ईश्वर का गुणगान), **देव यज्ञ**- हवन, अग्निहोत्र, **पितृयज्ञ** - माता-पिता, गुरु की सेवा सत्कार, **अतिथि यज्ञ** घर आए हितैषी, विद्वान का सत्कार, **बलिवैश्य यज्ञ**- अपने पर आश्रित पशु, कीट, पतंगों को भोजन।

१५. बाल विवाह, सती प्रथा एवं दहेज का विरोध किया।

आर्य समाज न होता तो, वेदों का मान कहाँ होता, सब कुछ होता लेकिन, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान नहीं होता। धर्म कर्म की गजियाँ अपनी-अपनी राहों पर जाती हैं,

राह भिन्न हो तो मंजिल दूर रह जाती है।

कर्म महान न हो तो कर्ता कभी महान नहीं होता, सब कुछ होता लेकिन, हिन्दु, हिन्दुस्तान नहीं होता।

आर्य समाज के १० नियमों में ये दो भी हैं-

* संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
* प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

तो आईए, इस मानव हितैषी संगठन से जुड़कर सनातन धर्म, समाज व राष्ट्र की उन्नति में भागीदार बनिए। साथ ही प्रत्येक रविवार को आर्य समाज के सत्संग में पधारकर जीवन लाभ प्राप्त करें।

मो. : ०९८२६६-५५११७

E-mail : prakasharyamhow@gmail.com